Class: M.A. IV Semester **Course Code: MUSI504 PR**

Subject:Music (TABLA) **Course type : Elective Course - IV**

MUSIC

(Advance Techniques Of Tabla Playing)

Lesson : 1 - 15

Dr. Rajeev Sharma

Centre for Distance & Online Education (CDOE)
Himachal Pradesh University
Gyan Path, Summer Hill, Shimla-171005

विषयसूची

क्रम	अध्याय	विषय	पृ. सं.
1		विषय सूची	2
2		प्राक्कथन	3
3		पाठ्यक्रम	5
4	इकाई – 1	भारतीय संगीत का पूर्ण इतिहास (वादन के संदर्भ में)	7
5	इकाई – 2	ताल और ताल के दस प्राण (वादन के संदर्भ में)	27
6	इकाई – 3	नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्य (वादन के संदर्भ में)	56
7	इकाई – 4	गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल (वादन के संदर्भ में)	81
8	इकाई – 5	लय और लयकारी (वादन के संदर्भ में)	93
9	इकाई – 6	तबला के क्षेत्र में विद्वानों का योगदान (वादन के संदर्भ में)	107
10	इकाई – 7	तबला में स्वतन्त्र वादन (वादन के संदर्भ में)	120
11	इकाई – 8	तबला संगत (वादन के संदर्भ में)	131
12	इकाई – 9	झुमरा ताल में कायदा, कहरवा और दादरा में लग्गी लड़ी (वादन के संदर्भ में)	144
13	इकाई – 10	पाठ्यक्रम में प्रयुक्त तिलवाड़ा ताल (वादन के संदर्भ में)	158
14	इकाई – 11	पाठ्यक्रम में प्रयुक्त सूल ताल (वादन के संदर्भ में)	169
15	इकाई – 12	पाठ्यक्रम में प्रयुक्त झुमरा ताल (वादन के संदर्भ में)	180
16	इकाई – 13	पाठ्यक्रम में प्रयुक्त दीपचन्दी ताल (वादन के संदर्भ में)	191
17	इकाई – 14	पाठ्यक्रम में प्रयुक्त कहरवा ताल (वादन के संदर्भ में)	201
18	इकाई – 15	हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत (वादन के संदर्भ में)	211
19		महत्वपूर्ण प्रश्न कार्यभार -	234

प्राक्कथन

संगीत स्नातकोत्तर के पाठ्यक्रम के क्रियात्मक विषय के MUSI504 PR में संगीत से सम्बन्धित उपयोगी सामग्री का समावेश किया गया है। संगीत में प्रायोगिक तथा सैद्धान्तिक दोनों पक्षों का योगदान रहता है। गायन तथा वादन में भी इन्हीं दोनों पक्षों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। संगीत में क्रियात्मक पक्ष के अंतर्गत मंच प्रदर्शन का भी महत्वपूर्ण स्थान रहता है। प्रस्तुत पाठ्यक्रम में संगीत की क्रियात्मक परीक्षा को ध्यान में रखकर पाठ्य सामग्री दी गई है। इस पुस्तक के

इकाई 1 में वादन के संदर्भ में भारतीय संगीत के इतिहास का वर्णन किया गया है।

इकाई 2 में वादन के संदर्भ में ताल और ताल के दस प्राणों का वर्णन किया गया है।

इकाई 3 में वादन के संदर्भ में नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्य का वर्णन किया गया है।

इकाई 4 में वादन के संदर्भ में भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल का वर्णन किया गया है।

इकाई 5 में वादन के संदर्भ में लय और लयकारी का वर्णन किया गया है।

इकाई 6 में वादन के संदर्भ में तबला के क्षेत्र में विद्वानों के योगदान का वर्णन किया गया है।

इकाई 7 में वादन के संदर्भ में तबला में स्वतन्त्र वादन का वर्णन किया गया है।

इकाई 8 में वादन के संदर्भ में तबला संगत का वर्णन किया गया है।

इकाई 9 में वादन के संदर्भ में झुमरा ताल में कायदा और रेला , कहरवा और दादरा में लग्गी - लड़ी का वर्णन किया गया है।

इकाई 10 में वादन के संदर्भ में तिलवाड़ा ताल का परिचय तथा बोलों का एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण में वर्णन किया गया है।

इकाई 11 में वादन के संदर्भ में सूल ताल का परिचय तथा बोलों का एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण में वर्णन किया गया है।

इकाई 12 में वादन के संदर्भ में झुमरा ताल का परिचय तथा बोलों का एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण में वर्णन किया गया है।

इकाई 13 में वादन के संदर्भ में दीपचन्दी ताल का परिचय तथा बोलों का एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण में वर्णन किया गया है।

इकाई 14 में वादन के संदर्भ में कहरवा ताल का परिचय तथा बोलों का एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण में वर्णन किया गया है।

इकाई 15 में वादन के संदर्भ में हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत का वर्णन किया गया है।

प्रत्येक अध्याय में शब्दावली, स्वयं जांच अभ्यास प्रश्न तथा उत्तर, संदर्भ, अनुशंसित पठन, पाठगत प्रश्न दिए गए हैं।

प्रस्तुत पाठ्यक्रम को लिखने के लिए स्वयं के अनुभव से, संगीतज्ञों के साक्षात्कार से तथा संगीत से सम्बन्धित पुस्तकों द्वारा शिक्षण सामग्री एकत्रित की गई है। मैं उन सभी संगीतज्ञों तथा लेखकों का आभारी हूं जिनके ज्ञान द्वारा तथा जिनकी संगीत संबंधी पुस्तकों द्वारा शिक्षण सामग्री को यहां लिया गया है। आशा है कि विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लाभप्रद होगी।

डॉ. राजीव शर्मा

COURSE CODE MUSI504 PR

Hindustani Music

Title-Stage-Performance

Max Marks 100, ESE-80, CCA-20 **Credit 4**

Course Objective

- To learn advance techniques of Tabla Playing.
- To learn to perform prescribed Talas on Tabla.
- To learn to perform prescribed Folk Talas on Tabla.

Course Outcome

- The student will learn advance techniques of Tabla Playing.
- The student will learn to perform prescribed Talas on Tabla.
- The student wil learn to perform prescribed Folk Talas on Tabla.

Course of Study **80 Marks**

1.Capacity to demonstrate the following

- Thekas of Tilwara, Sultaal, Deep Chandi, Jhumra, Kehrwa, playing on Tabla .

- One Kayed and one Rela in Jhumra Taal .
- Knowlodge and playing of Aad Laya, Kuaad Laya, and Biaad Laya .
- Laggi and Laddi in Kehrwa and Dadra Taal .
- Ability to accompany .
- Knowledge of Thekas of Himachali Folk Talas – Natti Taal, pahadi Kehrwa and chachar

इकाई -1
भारतीय संगीत का पूर्ण इतिहास
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
1.1	भूमिका
1.2	उद्देश्य तथा परिणाम
1.3	भारतीय संगीत का इतिहास
1.3.1	वैदिक, रामायण, और महाभारत काल
1.3.2	मौर्य और बौध काल
1.3.3	मुगुल काल
1.3.4	अंग्रेजों का काल
	स्वयं जांच अभ्यास1
1.4	सारांश
1.5	शब्दावली
1.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7	संदर्भ
1.8	अनुशंसित पठन
1.9	पाठगत प्रश्न

1.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह पहली इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास को प्राचीन काल, मध्य काल, और वर्तमान काल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, तथा आनंददायक होता है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी भारतीय संगीत के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- संगीत के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- संगीत के इतिहास का ज्ञान विकसित करना।
- वैदिक काल से अंग्रेजों के काल को समझने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, संगीत के इतिहास के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, संगीत के काल को समझने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, संगीत में किसने क्या योगदान दिया समझ पाएगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,वादन के अंतर्गत, भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास को जानने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

1.3 भारतीय संगीत का इतिहास

संगीत का दृष्टिकोण अत्यन्त ही सूक्ष्म है और इतिहास भी केवल पारस्परिक घटनाओं का संकलन मात्र ही नहीं, अतः भारतीय संगीत का इतिहास सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का निरपेक्ष परिचय है। अनेक विद्वानों के अनुसार भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास की रचना संभव ही नहीं, क्योंकि यह अत्यन्त प्राचीन और असंख्य पाण्डुलिपियों में यत्र-तत्र अप्रकाशित पड़ा है। सर्वप्रथम इन पाण्डुलिपियों को सार्थक रूप देना ही कठिन है और फिर इनका संकलन भी। परन्तु विद्वानों द्वारा दिये गये दृष्टिकोणों और औचित्यपूर्ण प्रकाशनों के आधार पर इस रचना को प्रकाशित करने की कोशिश की गयी है।

संगीत की सूक्ष्मता का आधार तो मानसिकता है, परन्तु इतिहास का स्वरूप मानसिक नहीं है। उसका आधार स्थूल है।

अतः भारतीय संगीत के इतिहास में स्थूल दृष्टि से तीन काल हो सकते हैं-

1. प्राचीन काल :- सभ्यता के उदय होने के पूर्व से सन् १२०० तक का काल। इस युग के संगीत का विवेचन प्रागैतिहासिक, प्राग्वैदिक एवं संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर किया गया है।

2. मध्य काल :- -इस काल में संगीत का बड़ा ही उत्कृष्ट विकास हुआ। इस युग में १२०१ से सन् १८०० तक के काल को वर्गीकृत किया गया है।

3. वर्तमान काल :- इस काल में सन् १८०१ से आज तक की सांगीतिक गतिविधियों की विवेचना की गयी है। किन्तु विद्वानों ने मतैक्यता के अभाव में ऐतिहासिक काल का विभा- जन अन्य रूप में भी किया है, जैसे-हिन्दू युग, मुसलमान युग, अँग्रेज युग आदि। परन्तु सामयिक दृष्टिकोण से किया हुआ विभाजन ही पूर्ण और उचित है। विभिन्न प्रकार के संगीत शास्त्रों तथा तालों का प्रारम्भ कब से हुआ इस पर सप्रमाण कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। फिर भी 'सदाशिव भरतम्' नाट्यशास्त्र में नाट्योपयोगी संगीत, वाद्य एवं नृत्य का विवेचन मिलता है। उस समय गन्धर्व संगीत का प्रचलन था।

1.3.1 वैदिक , रामायण , और महाभारत काल

वैदिक काल :-

ईसा के जन्म के तीन सहस्र वर्ष पूर्व भी भारतीय संगीत की उत्कृष्ट अवस्था का प्रमाण सिन्धु घाटी की सभ्यता के खनन से प्राप्त वीणाओं, वंशियों, विविध चर्म वाद्य, करताल, नर्तनशील मूर्तियों आदि के रूप में मिलता है। अन्य उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं जिसकी रचना और सभ्यता अनुमानतः ईसा से ढाई हजार वर्ष पूर्व की है। सामवेद में यज्ञ मण्डल को सदः कहा गया है एवं यज्ञ क्रिया हेतु साम गायन एक अनिवार्य आवश्यकता थी। इसका विवेचन सामवेद में विस्तृत मिलता है। के डॉ० फेल्वर; हालैण्ड के डॉ० हुग, रियार्ड साईमन एवं अपने भारत के स्वामी प्रज्ञानन्द जैसे विद्वानों का कहना है कि वैदिक युग में विभिन्न स्तरों में नयी- नयी शैलियों के गीतों का उद्भव हुआ था एवं सामगान को प्रारंभिक अवस्था में स्वर-मण्डल का प्रयोग न होते हुए भी अन्तिम अवस्था में उनका समावेश अवश्य हुआ था। स्वर - मण्डल 'नारदीय शिक्षा' में सात स्वर, तीन ग्राम (षड्ज, गान्धार, मध्यम आदि), इक्कीस मूर्च्छनाओं एवं उन्चास तान के समन्वित रूप को कहा गया है।

विभिन्न प्रमाणों में यह कहा गया है कि वैदिक संगीत में कोमल स्वरों का प्रयोग नहीं था, परन्तु स्वरों के निश्चित क्रम अवश्य थे। साथ ही रागात्मकता के साथ लयात्मकता का विशेष ध्यान रखा जाता था। यही लयात्मकता आगे भरतकालीन ताल शास्त्र की जननी है।

सामवेद भारतीय संगीत की परम्परा का प्रथम महान् ग्रन्थ है उसमें प्रत्येक मन्त्र को स्वरात्मक रूप दिया जाता है।

अथर्ववेद में वैदिक संगीत के साथ-साथ लोकिक संगीत तथा 'रैम्य' खूब प्रचलित था। इसमें दुन्दुभी के निर्माण शैली का विवरण मिलता है। इस प्रकार प्राचीन काल के संगीत में ताल नियमों की व्यवस्था सचमुच विश्व संगीत हेतु अनुकरणीय है।

रामायण एवं महाभारत काल : -

वैदिक संगीत के अलावा धार्मिक ग्रन्थों में रामायण एवं महाभारत काल के संगीत लय तत्त्व का भारतीय संगीत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों ही ईसा पूर्व से २०० वर्ष तक के प्राचीन युग के संगीत का विवरण देते हैं। इन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि उस काल में प्रत्येक वर्ग के लोगों में संगीत का बड़ा ही महत्त्व था। उदाहरण के तौर पर दोनों ही ग्रन्थों में युद्ध काल में तथा विजय के अवसरों पर वीरों का स्वागत दुन्दुभी बजाकर किया जाता था। किसी भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के आगमन पर उनका स्वागत संगीत से किया जाता था। उस काल तक लोग समझने लगे थे कि मानसिक तथा शारीरिक थकान को संगीत के माध्यम से दूर किया जा सकता है और लोग अपने प्रत्येक कार्य को संगीत तथा नृत्य के योग से करते थे। संगीत के क्षेत्र में पुरुष तथा स्त्रियों का समान अधिकार था। रामायण में रावण तथा महाभारत में कृष्ण को संगीत का बड़ा भारी विद्वान् कहा गया है। इतिहास में काल का ज्ञान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, परन्तु इन वीर- काव्यों के काल पर भी मतभेद है। डॉ० कृष्ण स्वामी के मतानुसार रामायण का काल महाभारत युद्ध के बाद का है यद्यपि रामायण काल को महाभारत के पूर्व का मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

रामायण में संगीत का उल्लेख बड़ी ही उदारतापूर्वक किया गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बिना संगीत के किसी राज्य या राज्य सभा की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस क्षेत्र में वाल्मीकि की उदारता संगीतविदों के बीच बड़ी ही सराहनीय है। इस दृष्टिकोण से महा- भारतकार व्यास को कृपण ही कहा जायगा, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस महाकाव्य में महाभारतकालीन संगीत का संपूर्ण विवरण नहीं मिलता है। फिर भी गीत, वाद्य एवं नृत्य के सम्मिलित उल्लेखों की कमी नहीं है।

इस काल के आरम्भ में वैदिक युग के संगीत के आत्म-सौन्दर्य की झलक मिलती है, परन्तु यह अधिक दिनों तक इसी रूप में न चल सकी। लोगों का जीवन साधन प्रिय न रहा। लोग आत्म-सोन्दर्य की जगह बाह्य- सौन्दर्य की ओर झुक गये। संगीत के मनोरंजन का रूप भी ऊपर आ रहा था। गणिकाओं का नृत्य तथा संगीत राज-परिवारों का प्रमुख अंग बन चुका था। शास्त्रीय संगीत के साथ लोक संगीत भी पनप रहा था। इसी काल में भारतीय संगीत व्यापारियों द्वारा बर्मा तथा लंका आदि देशों में गया।

1.3.2 मौर्य और बौध काल

मौर्य एवं बौद्धकालीन लयात्मक तत्त्व :-

इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया था। अतः इस काल में भारतीय संगीत का प्रचार एवं विकास महत्त्वपूर्ण रहा है। तत्कालीन लय वाद्यों का स्वरूप रामायण-महाभारत के लय वाद्यों के अनुरूप ही था। इस काल का महत्त्व भारतीय संगीत के क्षेत्र में बहुत अधिक है।
इस काल की जातक कथाओं से भारतीय संगीत एवं वाद्यों की तत्कालीन स्थिति पर संतोषप्रद प्रकाश पड़ता है। उदाहरणस्वरूप भेरी वादक जातक में भेरी का उल्लेख मिलता है तथा शंख जातक शंख का मतस्य जातक में भारतीय संगीत का विशेष उल्लेख मिलता है। इसमें संगीत प्रति- योगिताओं का बड़ा ही मनोरंजक विवरण मिलता है। इसमें वीणा के सात स्वरों का भी उल्लेख मिलता है। चुल्ल प्रलोभन जातक में नृत्य-गीत-वादन कुशला एक नर्तकी का विवरण मिलता है।

अजन्ता के फेस्को चित्रों में भी बौद्धकालीन संगीत का ऐतिहासिक प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। उन चित्रों में गौतम बुद्ध को संगीत शिक्षा लेते हुए दिखाया गया है। ब्राह्मणों द्वारा बालकों को संगीत शिक्षा देने की विद्या को भी दिखाया गया है।

इसके बाद के काल को पौराणिक काल कहा गया और इस युग संगीतज्ञ चरित्र से हटता जा रहा था। उसमें संयम का अभाव होता जा रहा था और उच्छृङ्खलता बढ़ती जा रही थी। नृत्य-कला भी उन दिनों उच्च

स्तर पर थी। नाट्य-रास तथा जल-क्रीड़ा जनता के मनोविनोद के साधन बन गये थे। गायन का कार्य प्रायः स्त्रियाँ करती थीं। उसी काल में हमें उर्वशी, हेमा, रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा आदि प्रसिद्ध नर्तकियों के नाम मिलते हैं। मौर्य काल में संगीत को अपने पूर्वकालिक मर्यादा तक पहुँचाने के बहुत प्रयास किये गये। इसके पूर्व बताया गया है कि अन्तिम बौद्ध काल तथा पौराणिक कालों में संगीत अपनी मर्यादा से हट चुका था और मनो- विनोद का साधन मात्र रह गया था। इस काल में संगीत के दबे हुए आन्तरिक सौन्दर्य को पुनः उजागर करने की कोशिशें की गयीं। चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अन्य शासकों ने कला की ओर विशेष ध्यान रखा। तत्कालीन स्वर्ण-मुद्राओं में वीणा-सदृश वाद्य बजाते हुए अंकनों से हमें तत्कालीन सांगीतिक उल्लेख प्राप्त हुए हैं।

महाराज विक्रमादित्य काल के निर्मित बृहत् नाट्य-शाला और संगीत- शाला उस काल के विकसित संगीत कला के आंशिक प्रमाण हैं। इसी काल के (सन् ४०० से ४५० तक) महाकवि कालिदास थे जिनकी रचनाओं में तत्कालीन नाट्य एवं काव्य शैली के संगीत हमें प्राप्त होते हैं। इस काल में गान्धर्व या मार्ग संगीत का सामाजिक स्तर से लोप हो चुका था और देशी संगीत का प्रचार व अध्ययन तत्कालीन समाज में ही रहा था। उस काल के सांगीतिक शब्दों के प्रयोग कालिदास के 'कुमार संभव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्रम्' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

मृदङ्ग, सूरज आदि चर्म वाद्यों का प्रयोग तथा नृत्य कला इस काल में चरम सीमा पर थी। उस काल के ग्रन्थों में मूर्च्छनाओं, चर्चरी तालों तथा अन्य प्रयुक्त तालों का वर्णन मिलता है। उसकी विशेषता यह थी कि पात्र लक्षणों में ताल को उत्तम पात्रता हेतु एक अनिवार्य तत्त्व माना गया था।

संगीत कला के प्रचार-प्रसार में इसका राजनैतिक दृष्टि से उपयोग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा था। सैल्युकस की पुत्री जो एक उत्तम संगीतज्ञा थी, उसका विवाह चन्द्रगुप्त से हो जाने के कारण, यूनानी संगीत का प्रथम बार आगमन हुआ तथा भारतीय संगीत उस काल में बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार का भी माध्यम बना था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय संगीत धर्म-प्रचार के रूप में तिब्बत, चीन, जापान, मिस्र, यूनान, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, बर्मा और लंका पहुँचा। इसलिए इन विदेशी संगीतों के मौलिक तत्त्व भारतीय संगीत से समानता रखते हैं।

इसके बाद का संगीत हर्षवर्द्धन काल का संगीत कहलाता है और यह काल ६०६ ई० सन् से ६०७ ई० सन् तक का था। चूंकि हर्षवर्द्धन तथा उनकी बहन राज्यश्री दोनों ही संगीत के ज्ञाता एवं प्रेमी थे अतः उनके काल में संगीत का स्रोत इतनी तीव्रता प्लावित हुआ कि विदेशों तक धाराएँ पहुँचीं। महाकवि बाणभट्ट हर्ष के दरबार में ही रहे, और उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक संगीत की झलक परिलक्षित होती है। उस समय देश की जनता में गायन-वादन तथा नृत्य के प्रति असीम प्रेम था।

इतिहासकारों के मतानुसार इसी काल की मत्तंग कृत रचना 'बृहद्देशी' थी जो भारतीय संगीत का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

६४१ ई० सन् से १००० तक के प्राचीनकाल को भूत काल कहा गया जो बौद्ध काल के समान ही था। इस काल में भारत अनेक टुकड़ों में बँट गया था और छोटे-छोटे राजाओं का राज्य-काल था। ऐसी दुःखद स्थिति में संगीत की प्रारम्भिक परम्परा को आघात पहुँचना स्वाभाविक था। इसी काल के संगीत में वर्गवाद का प्रादुर्भाव हुआ और अनेक वर्गों के अनुकूल अलग-अलग इच्छा-अनिच्छा के अनुरूप संगीत का विकास एवं प्रचार हुआ। इस काल में स्त्रियों को संगीत से विशेष प्रेम होता था और संगीत उनके दैनिक कार्य-कलापों में घुल-मिल गया था।

महाकवि जयदेव की रचनाओं में, जिसमें गीत-गोविन्द प्रमुख है, इस काल के राग-नामों और तालों का उल्लेख मिलता है। इसी युग में मोहम्मद गजनी, शहाबुद्दीन गोरी आदि ईरानी शासकों ने भारत पर आक्रमण किया। ऐसा कहा जाता है ईरान के बादशाह बहुरामन गौर ने १२०० भारतीय संगीतज्ञों को ईरान बुलवाकर नौकरी पर रख लिया था। इसी काल में धीरे-धीरे मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया और इसी काल में धीरे-धीरे नृत्यों का भी खूब विकास हुआ। 'नारदीय शिक्षा' जो नारद कृत एक सुन्दर ग्रन्थ है, में इस काल का सांगीतिक वर्णन खूब मिलता है।

1.3.3 मुगुल काल

मुगल काल : -

५००० से १२६० ई० तक को मुस्लिम प्रवेश काल की संज्ञा दी जाती है। इस बीच मुस्लिम लोग भारत में स्थायी नहीं हो पाये थे परन्तु उनका आक्रमण निरन्तर होता रहा था। ऐसे काल में संगीत एवं अन्य कलाओं का पतन स्वाभाविक था और एक लेखक कैप्टन डे ने 'म्यूजिक ऑफ सदर्न इण्डिया' में लिखा भी है "भारतीय संगीत का सबसे समृद्धशाली युग मुस्लिमों की विजय के पूर्व स्थानीय राजाओं का काल था।" भातखण्डे जी ने इस दुःखद परिस्थिति पर कहा है कि "हम भारतवासियों ने अपने संगीत के प्राचीन ग्रन्थों को खो

दिया, और उनकी सुरक्षा की हम कोई व्यवस्था नहीं कर पाये। इसी अव्यवस्था के परिणामस्वरूप हिन्दी के पूर्ण विकसित संगीत का पतन हिन्दुस्तान पर मुसलमान राजाओं की विजय के साथ हुआ।"
उमेश जोशी के मतानुसार "जिस गति से भारतीय संगीत का विकास क्षितिज की ओर अग्रसर हो रहा था, अगर उसके मार्ग में मुस्लिम प्रवेश युग न आता तो फिर आज विश्व में भारतीय संगीत के गौरव की सुषमा अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होती।"

कैप्टन डे के मतानुसार "इस काल में संगीत शास्त्र की प्रगति रुक गयी एवं शीघ्रता से उनका पतन होने लगा।"

इन पारिस्थितिक विषमताओं के बावजूद भी भारतीय संगीत की पावन धारा पूर्णतया मुस्लिम संगीत की धारा में विलुप्त नहीं हो पायी और इनका विकास मुस्लिम संगीत की सतह पर ऊपर-ही-ऊपर नव पीढ़ी को आलोकित करता रहा। इसी के परिणामस्वरूप मुगल काल (१५२५ ई० सन् से १७०७ ई० सन् तक) में भारतीय संगीत एक बार फिर अपनी चरम प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

इस युग को शासकों के नाम पर अलग-अलग कालों में अलग- अलग ढंग से वर्णित किया है –

खिलजी युग :- (१२७० से १३३२) संगीत प्रेमी खिलजी के दरबार में अमीर खुसरो ने स्वाभाविक ख्याति प्राप्त की तथा संगीत के क्षेत्र में अभूत- पूर्व विकास का कार्य किया। जैसे—कव्वाली गायन शैली का सृजन, साजगिरी, सरपरदा, झीलफ आदि रागों की रचना, सितार का निर्माण, तबले एवं बायें का निर्माण एवं प्रचार। इन कार्यों के साथ-साथ उन्होंने संगीत-पुस्तकों की रचना की।

इसी के शासन काल में महान् संगीतज्ञ शारङ्गदेव ने भारतीय संगीत निर्माण में अभूतपूर्व योगदान 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना के रूप में दिया।

तुगलक काल : - (१३२० से १४१२ ई० सन् तक) का काल तुगलक काल के नाम से जाना जाता है। इस बीच प्रशासनिक अव्यवस्था ने सांगीतिक वातावरण को अस्त-व्यस्त कर दिया, परन्तु मुहम्मद तुगलक जो एक शासक के साथ-साथ संगीत प्रेमी भी था, संगीत के पुनर्विकास का सहारा बना। इस काल में सरल लघु तालों में गजल, कव्वाली, दादरा आदि की लोकप्रिय रचनाएँ सराहनीय हैं।

लोदी युग :- १४१२ से १५२५ ई० सन् तक का काल लोदी युग भारतीय संगीत क्षेत्र में समर्थन एवं संरक्षण का काल था। इस बीच मुस्लिमों के साथ-साथ हिन्दू कलाकारों को भी संरक्षण तथा सहानुभूति मिली एवं इस काल में

संगीत में हुए अनुचित परिवर्तनों पर भी प्रतिबन्ध लगा तथा कला की प्राचीनता को स्थायी रखने की व्यवस्था भी की गयी। इस काल में सामूहिक लय का पूर्ण विकास हुआ तथा समूह गान के निर्वाह हेतु बड़े-बड़े आकार के ढोल, मादल आदि वाद्यों का निर्माण हुआ।

सिकन्दर लोदी का नाम संगीत के विद्वान् लोग आदर से लेते थे। १५२५ ई० सन् के बाद भारतीय शासनकाल में मुगलों का पूर्ण आधिपत्य हो गया, परन्तु यह काल भारतीय संगीत के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और लम्बे अर्से का काल था। इसमें कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। १७०७ तक के समय को मुगल काल में रखा गया और इसके बाद संगीत इतिहास का वर्तमान युग प्रारम्भ हुआ।

मुगलकालीन शासन का आरम्भ बाबर से हुआ जो स्वयं एक कुशल गायक एवं संगीतज्ञ था। उसके काल के युद्धों में युद्ध-संगीत का प्रभाव बहुत अच्छा रहा। साथ ही उन में एक अपूर्व क्षमता भी थी। पानीपत के युद्ध में इसका निर्णायक योगदान था। बाबर के समकालीन मल्लिनाथ पण्डित ने उस काल के संगीत का वर्णन 'संगीत रत्नाकर' में विस्तृत रूप से की है। यह उस काल की एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल गायकी को सर्वप्रथम प्रचलित किया। इसका विवरण तत्कालीन रामात्य की रचना 'स्वर मेल कलानिधि' नामक ग्रन्थ में मिलता है।

ऐतिहासिक सांगीतिक पुस्तकों आदि से ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल काल के प्रथम चरण में दक्षिण संगीत अपनी सुषमा के प्रकाश को विकसित कर रहा था, जबकि उत्तर भारत के विशाल प्रांगण में विदेशी संगीत मिश्रित भारतीय संगीत अपनी विचित्र आभा बिखेर रहा था।

जब बाबर के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा उस समय सूफियों का बड़ा जोर था। सूफी सन्तों तथा भक्त जनों ने संगीत को नैतिक चरित्रों के उत्थान का माध्यम बनाया, जिससे संगीत को अभूतपूर्व जीवनी शक्ति मिली। इसी काल में ग्वालियर के सूबा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद तथा धमार गायकी का ढंग प्रारम्भ किया। इसका वर्णन 'मान कुतूहल' नामक ग्रन्थ में लिखा है - "ध्रुपद भारतवर्ष का ओजपूर्ण संगीत है तथा इस माध्यम से भारतीय वीरों की वीरगाथाओं का गान किया गया है"।

— कैप्टन विलर्ड कृत ग्रन्थ 'आंग्ल' से साभार।

यह काल ऐतिहासिक उथल-पुथलों से भरा हुआ है और इसी बीच भारतीय संगीत का गौरवपूर्ण इतिहास भी विकसित हुआ। राजा मानसिंह तोमर के दरबार में ही महान् गायक बैजू बावरा का विकास हुआ। बावरा के इतिहास में संगीत सम्मेलन तथा अधिवेशनों का उल्लेख भी मिलता है।

परन्तु ऐतिहासिक प्रसंगों में बैजू बावरा के साथ अन्याय हुआ था। 'आईने-अकबरी' नामक ग्रन्थ में बक्सू नाम के गायक की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है जबकि बैजू बावरा नाम का कोई गायक नहीं है। कुछ विद्वानों

के मतानुसार जिस प्रकार तन्नू मिश्र मुस्लिम काल में तानसेन हो गये थे, उसी प्रकार हो सकता है ग्रन्थों में बैजू को बक्सू नाम दिया गया हो।

दक्षिण में संगीत का पूर्ण विकास इसी काल में हुआ था। महाराष्ट्रीय संगीत-प्रेम उसी काल में जागृत हुआ। ग्वालियर तथा कर्नाटक में कर्नाटकी संगीत का विकास जन-सामान्य में इसी काल में हुआ था।
भारतीय संगीत के इतिहास में अकबर के काल का विशेष महत्त्व है और इस काल में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए। इतिहास को साक्षी मानते हुए पूर्व वर्णित मुगल काल में हम भारतीय संगीत का विकसित रूप तो पाते हैं, परन्तु संगीत के पूर्ण विकास में मुगल शासकों से कोई खास मदद नहीं मिली। इसका मुख्य कारण है धर्म में अन्तर और संगीत का धर्म से सीधा सम्बन्ध।

इसके विपरीत अकबर उदारवादी नीति का शासक था और उसने संगीतज्ञों को समान रूप से विकास का अवसर दिया। उसके दरबार में दोनों ही धर्म के संगीतज्ञों को समान अधिकार और समान अवसर प्रदान किया गया।

अकबर (१५५६-१६०५ ई० सन्) स्वयं कलाप्रिय व्यक्ति था। उसके दरबार में कई संगीतज्ञों का माननीय स्थान था जिसमें राजा मानसिंह, तानसेन तथा उनके शिष्य बैजू बावरा प्रमुख थे। अकबर काल में ही महात् संगीत स्वामी हरिदास हुए जिन्होंने अपनी एकाग्रता और प्रतिभा के फलस्वरूप संगीत में अलौकिक और अभूतपूर्व शक्तियों का सम्पादन अमर संगीतज्ञ तानसेन और बैजू बावरा के रूप में किया। इनके संगीतों के साथ कई तरह की किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं जो इनकी सम्मोहक शक्ति की याद दिलाती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि तानसेन की रचना शक्ति अद्भुत थी एवं अनेक चमत्कारपूर्ण ध्रुपदों की रचना उनके द्वारा की गयी।

इसके अतिरिक्त इसी शताब्दी में भक्ति काव्य की गंगा घर-घर मधुर गान के रूप में बही। हिन्दी काव्य के गगन में सूर्य के समान सूरदास एवं चन्द्र के समान तुलसीदास का उदय हुआ जिनके प्रकाश में भारतीय संगीत घर-घर में आलोकित हुआ। सूरदास एक उत्कृष्ट गायक भी थे और उनका स्थान भक्ति संगीत में अविस्मरणीय है। उनकी रचनाओं से भक्ति संगीत अत्यधिक समृद्ध हुआ। उनके पदों में रागों एव तालों के विशेष उल्लेख मिलते हैं जिनकी संख्या लगभग ८० है।

कबीर तत्कालीन संगीत समाज का दार्शनिक प्रतिनिधि था जिसने मुगलकालीन भोग-विलास के भवन में भारतीय समाज की फँसी नाव को पतवार का सहारा दिया एवं त्रस्त समाज की रक्षा की।

तुलसीदास कृत रामचरित मानस हिन्दी के क्षेत्र में अमर ग्रन्थ है साथ ही इसकी लोकप्रियता राजा से लेकर रंक तक सब में समान है। उनके संगीत के ज्ञान की गहराई उनके रचित काव्यों में ही मिलती है। इनका कोई अलग इतिहास नहीं है। रूसी लेखिका नियोन्धा कुंची ने लिखा है "तुलसी के सुन्दर काव्य की नींव संगीत है, और मैं समझती हूँ कि अकबर के काल में जितना संगीत का प्रचार इस महान् कवि ने किया होगा उतना शायद तानसेन भी न कर पाया हो. क्योंकि इस महान् कवि की दृष्टि में संगीत और काव्य का एक ही रूप था। इसी एक रूप की दिव्य आभा फैलाने में वे पूर्ण सफल हुए।"

१५६६ ई० के लगभग अकबर के समय में ही कर्नाटकी संगीत पण्डित पुण्डरीक विट्ठल के चार महाग्रन्थों से समृद्ध हुआ
(१) सद्राग चन्द्रोदय (२) रागमाला (३) रागमंजरी एवं (४) नरतन निर्णय।

संगीत की दृष्टि से मुगल काल में अकबर-काल को स्वर्ण काल कहा गया क्योंकि अकबर ने संगीत को धर्म के समान पवित्र और दिव्य उपकरण माना और इसको विकसित एवं सुन्दर बनाने में पूर्ण योग दिया।

अकबर के पुत्र जहाँगीर (१६०५ से १६२७ ई० सन् तक) और जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ दोनों ही संगीत-प्रेमी थे। उनको नृत्य से अधिक लगाव था। इनके दरबार में छत्तर खाँ, किलाज खाँ, खुर्रमदाद, मक्खू, परवेशदाद, हमजान आदि कलाकार थे। पं० दामोदर कृत संगीत दर्पण नामक ग्रन्थ की रचना इसी काल में हुई। उत्तरी संगीतज्ञों के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, सोमनाथ द्वारा लिखित 'राग बिबोध' की रचना इसी काल में हुई।

जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ के संगीतमय व्यक्तित्व का ऐतिहासिक विवरण कई विदेशी इतिहासकारों ने दिया है। उस काल के संगीत सम्मेलन, प्रतियोगिताएँ आदि के आयोजन तथा कुशल कलाकारों को पुरस्कृत करने एवं इन कार्यों में धार्मिक निष्पक्षता के प्रमाण मिलते हैं। यह काल भी ध्रुपद शैली का था एवं फारसी, अरबी ध्वनियों के मिश्रण से भारतीय संगीत में कई नव ध्वनियों का भी विकास हुआ।

इस काल में संगीत के दृष्टिकोण से एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और संगीत की बागडोर धार्मिक संगीतज्ञों के हाथ से निकलकर व्याव- सायिक एवं निम्नस्तरीय सामाजिक लोगों के हाथ में पड़ गयी। फलस्वरूप गणिकाएँ संगीत का प्रयोग जीविकोपार्जन हेतु करने लगीं। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इस काल तक कत्थक नृत्य का विकास हो चुका था। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कुछ का मत हैं कि यह बात उचित नहीं है।

इसके बाद का काल, जिसमें **"औरंगजेब"** का शासन था, भारतीय संगीत के पतन का काल था। औरंगजेब का दृष्टिकोण धर्म के लिए कट्टर- पंथी था। इतिहासकारों के मतानुसार वह भारतीय संगीत की आत्मा को पहचान नहीं पाया और इसे समाप्त करने का बड़ा ही दुस्साहसिक कदम उठाया, फलस्वरूप उस काल के संगीतज्ञों की बड़ी दुर्दशा की गयी और उन्हें समाज से बहिष्कृत करने का प्रयास किया गया।

परन्तु संगीत का स्वरूप सिर्फ तत्कालीन श्रृंगार से भरे हुए रीति गान तक ही सीमित नहीं था। इसके विस्तृत रूप का ज्ञान शासक औरंगजेब को नहीं था, और उसका यह प्रयास पूर्णतः असफल रहा। संगीत की चर्चा एवं उसका प्रचार अक्सर नहीं हुआ। इसी काल में अहोबल ने 'संगीत पारिजात' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसका फारसी अनुवाद भी हुआ। लोचन कृत 'राग तरंगिनी' हृदयनारायण कृत 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश' आदि भी इसी युग की रचना हैं। इन पुस्तकों में स्वराध्याय और रागाध्याय का विस्तृत वर्णन मिलता है। पण्डित भावभट्ट ने भी इसी काल में अपनी सांगी- तिक पुस्तकों की रचना की और वे एक कर्नाटकी विद्वान् थे। इस प्रकार संगीत साहित्य की दृष्टि से यह काल विशेष महत्त्व का था।

तत्कालीन काव्यधारा में भी परिवर्तन हुए। हिन्दी के **महाकवि भूषण** की वीरत्वपूर्ण रस की कविताओं से स्पष्ट है कि उपयुक्त स्वर और द्रुत लय पूर्ण ताल योजना का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार ओजपूर्ण संगीत- मय काव्य-धारा के प्रचार का श्रेय तत्कालीन कवि भूषण को है।

इसके बाद **मराठा काल** का उदय हुभा और ५४ वर्षों तक (१७०७ से १७६१ तक) का सांगीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काल था। इस काल में भक्ति संगीत का विशेष महत्त्व रहा। रामदास, तुकाराम आदि भक्त कवियों का विकास हुआ और इन्हें महाराष्ट्र में ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। इस काल म महाराष्ट्र में संगीत का महत्त्वपूर्ण विकास हुआ। मुगलकाल कई अन्य उल्लेखनीय सांगीतिक प्रतिक्रियाएँ भी हुई जिनके समय का पूर्ण निर्धारण नहीं हो सका है। पंजाब में गुरु नानक के भक्ति-संगीत से संगीत का भाव लोगों में जागृत हुआ तो यही कार्य उत्तर प्रदेश में स्वामी रामानन्द की भक्ति रसपूर्ण रचनाएँ एक वीरगाथा गान के रूप में 'आल्हा ऊदल' ने किया। साथ ही मलूकदास, दूलनदास, बीरू, रैदास आदि-आदि सन्तों ने भक्ति संगीत को समृद्ध किया। चैतन्य के संगीत ने बंगाल में मानवता की विराटता को चित्रित किया तो मैथिली के महाकवि विद्यापति ने मिथिला की।

इन्हीं भक्ति संगीत पर आधारित मणि रूप में विकसित नृत्य एवं संगीत इस भारतीय संगीत की एक स्थायी कलात्मक सम्पत्ति बनी। तत्कालीन शिल्पज्ञों ने संगीत के वाद्य एवं वादन विधियों का निर्माण करके अपने संगीत प्रेम को प्रमाणित किया।

इस काल की नारी में अद्भुत संगीत क्षमता थी। उनमें से चाँद बीबी, रजिया सुल्ताना, जेबुन्निसा आदि महत्त्वपूर्ण हैं। मुस्लिम होते हुए भी इनमें भारतीय संगीत के प्रति विशेष अनुराग था और उनका संगीत के विकास में पूर्ण योगदान भी था।

इस काल में रहीम, रसखान, यारी साहब, दरिया साहब, ताज, नजीर, करीम, मकसूद, निजामुद्दीन औलिया आदि अनेक मुस्लिम संत हुए जिनकी कृष्ण-भक्ति रचनाएँ संगीत-गगन में अम्लान कान्ति लेकर देदीप्य-मान हैं।

1.3.4 अंग्रेजों का काल

अंग्रेजों का काल :-

भारतीय संगीत के इतिहास के मध्यकालीन युग में अंग्रेजों का काल भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण काल रहा था। सन् १७५० ई० से ही अंग्रेजों के काल का प्रवेश माना जाता है। अँग्रेजों का दृष्टिकोण भारतीय संगीत के प्रति बड़ा ही दोषपूर्ण था। उनकी समझ से भारतीत संगीत एक कोलाहल मात्र था। अतः उन्होंने सदैव इसकी उपेक्षा ही की। इस काल में संगीतज्ञों को सम्मान और प्रोत्साहन की जगह घृणित दृष्टिकोण ही मिला। परिणामस्वरूप भारतीय संगीत ऐसे लोगों के हाथ चला गया जिन्हें समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार संगीत पर वेश्याओं का पूर्ण अधिकार हो गया। प्रभावशाली तथा कुलीन लोगों का संगीत से लगभग सम्पर्क समाप्त हो चला था।

इस परिस्थिति में कुछ इने-गिने संगीतज्ञों ने क्षेत्रीय राजाओं के यहाँ आश्रय लिया और अपने मतानुसार बिना किसी शास्त्राधार के ही संगीत की डूबती नौका को तिनके का सहारा दिया, फिर भी संगीत का विकास अवरुद्ध हो चुका था।

रियासती राजाओं ने भी पाश्चात्य शिक्षा पाकर भारतीय संगीत का निरादर करने लगे। ऐसे समय में बंगाल के सौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने सांगीतिक ग्रन्थों की रचना कर अपने ताल-शास्त्र के ज्ञान का परिचय दिया। उनमें से 'युनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक' का विश्व संगीत-ग्रन्थों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय संगीत में सौरेन्द्र की परम्परा में रवीन्द्रनाथ ठाकुर हुए। उन्होंने परम्परा से प्रचलित संगीत शैली में परिवर्तन कर एक नवीन क्रान्ति का सृजन किया। उनकी कविता स्वरों के साँचों में ढलकर ऐसी निकली जो

सदा-सदा के लिए संगीत में अमर हो गयी। संगीत की उस शोचनीय स्थिति ने उनके काव्य में बड़ी शक्ति प्रदान की।

सऊ काल की सांगीतिक स्थिति का उचित मूल्यांकन कैप्टन विलर्ड ने 'ए ट्रोटाइम्स ऑन दी म्यूजिक ऑफ हिन्दुस्तान' में किया है और इसकी रचना १८१४ ई० में हुई थी। अन्य संगीतकारों ने भी इस क्षेत्र में कोशिशें की और सफल भी हुए। इन्हीं ग्रन्थों के द्वारा भारतीय संगीत विदेशों तक पहुँचा और अन्य देशों के संगीत से इसका तुलनात्मक अध्ययन हो पाया।

इसी काल में संगीत के दो ध्रुवों के रूप में पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे तथा पलुस्कर उदित हुए तथा एक ने संगीत के कला पक्ष की तो दूसरे ने उसके शास्त्र पक्ष की आजीवन सेवा की। इनका जन्म संगीत के ऐसे संक्रमण काल में हुआ जिसमें उसकी उन्नति बड़ी मुश्किल बात थी। फिर भी अपनी आर्थिक विपन्नता के बावजूद भी भातखण्डे जी ने संगीत के विकास का पूर्ण प्रयास किया और सफल हुए। उन्होंने उस काल के छोटे- छोटे राजाओं का आश्रय लेकर संगीत सम्मेलन भी करवाये तथा अलग- अलग मतों के बीच मतैक्य स्थापित करने में सफल हुए। कुछ समीक्षकों ने उन्हें दुस्साहस की सीमा लांघने के आरोप से आरोपित भी किया है, परन्तु तत्कालीन पुस्तकों के अध्ययन से, उस विशेष परिस्थिति में उनके कार्यों के सही मूल्यांकन से तथा संगीत के गौरवपूर्ण रीति में उनकी एकनिष्ठता से पता चलता है कि उन्होंने आवश्यकतानुसार आजीवन ही संगीत को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित करने में सफलतापूर्वक लगे रहे। संगीत घरानों की संकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागने का पहला उदाहरण उन्हीं से मिलता है तथा ऐसा करके उन्होंने संगीत की समृद्धि के मार्ग को प्रशस्त किया। इस प्रकार भारतीय संगीत को नयी जीवनी शक्ति तथा एक नवीन परम्परा मिली।

पलुस्कर जी ने भी भातखण्डे के अनुरूप ही विपरीत परिस्थिति में संगीत की भरपूर सेवा की तथा नवीन स्वरलिपि-पद्धति का जन्म दिया। भातखण्डे स्वरलिपि की भाँति ही यह भी खूब लोकप्रिय हुई। परन्तु आज- कल इन्हें सम्प्रदाय प्रवर्तक मानना भ्रममूलक है तथा निराधार और अनुचित भी। इन विवादों के बावजूद दोनों ही भारतीय संगीत के परम्परावाहक रहे हैं और उनका आदर करते हुए उसी को आगे बढ़ाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

इनके अलावा तत्कालीन कलाकारों व संगीतज्ञों में बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, रामकृष्ण वझे, राजाभैया पूँछवाले, राजा नवाब अली आदि हैं।

इस काल के संगीत की समृद्धि एवं प्रचार और संरक्षण स्वरलिपि के आधार पर हुए संगीत-ग्रन्थों के निर्माण से ही सम्भव हुआ क्योंकि उस काल में संगीतज्ञों को न कोई सम्मान मिल रहा था और न कोई संरक्षण ही। इस दिशा में पं० भातखण्डे जी ने बड़े ही उल्लेखनीय कार्य किये। विदेशी लेखकों में मि० डेनेलु ने भारतीय संगीत का अध्ययन निष्ठापूर्वक किया और फिर 'नार्दनं इण्डियन म्यूजिक' नामक ग्रन्थ की सुंदर रचना की।

इसी काल में, उदयशंकर तथा रामगोपाल जैसे नृत्य के साधकों का विकास हुआ जिनके फलस्वरूप आज भी भारतीय नृत्य का अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अपना स्थान प्राप्त है। इन्हीं महान् कलाकारों और शास्त्रज्ञों में अब्दुल करीम खाँ, फैयाज खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर, अलाउद्दीन खाँ, बड़े गुलाम अली, विनायक राव पटवर्द्धन, बी० आर० देवघर, मनहर बर्वे, रवि- शंकर, बी० जी० जोग आदि भी हैं जिन्होंने भारतीय संगीत को गौरवान्वित किया। भारतीय संगीत के वर्तमान काल को जो १८०१ से आज तक का काल है, दो भागों में बाँटते हैं। पहला स्वतन्त्रता से पहले का अंग्रेजी युग के भारतीय संगीत का इतिहास तथा उसके बाद १८४७ के बाद का काल जिसमें स्वतन्त्र भारत का संगीत स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित हुआ है। अंग्रेजी युग के भारतीय संगीत का विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

स्वयं जांच अभ्यास 1

1.1 भारतीय संगीत के इतिहास में स्थूल दृष्टि से कितने काल हो सकते हैं?

क) 3

ख) 8

ग) 4

घ) 10

1.2 महाकवि कालिदास किस काल में हुए ?

क) 1200 से 1300 ई०

ख) 400 से 450 ई०

ग) 750 से 800 ई०

घ) 1857 से 1947 ई०

1.3 रामचरित्र मानस किसने लिखा ?

क) अकबर

ख) तुलसीदास

ग) विक्रांत शर्मा

घ) मदन

1.4 अकबर के पुत्र जहांगीर का शासन काल कितने वर्षों का था ?

क) 10

ख) 99

ग) 22

घ) 30

1.5 भारतीय संगीत के पतन का काल था ?

क) ओरंगजेब

ख) बौध

ग) मौर्य

घ) तुगलक

1.6 मराठा काल में किन सन्तों ने भक्ति संगीत को समृद्ध किया?

क) भवानी सिंह

ख) अमीर खुसरो

ग) तानसेन

घ) मलूक दास

1.7 अंग्रेजों के काल का प्रवेश माना जाता है?

क) 1702

ख) 1857

ग) 1750

घ) 1981

1.4 सारांश

भारतीय संगीत किस किस काल में कैसे कैसे बदला और किन लोगों का संगीत के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा इसके विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय संगीत का इतिहास सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का निरपेक्ष परिचय है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

1.5 शब्दावली

- ध्रुपद: एक तरह का गायन का प्रकार।
- लय: गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- अवनद्ध वाद्य: जिस वाद्य के उपर चमड़ा मडा होता है।
- आश्रय : किसी से सहायता लेना ।

1.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

1.1 उत्तर: ग)

1.2 उत्तर: ख)

1.3 उत्तर: ख)

1.4 उत्तर: ग)

1.5 उत्तर: क)

1.6 उत्तर: घ)

1.7 उत्तर: ग)

1.7 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

1.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

1.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. भारतीय संगीत का इतिहास लिखिए।

प्रश्न 2. वैदिक काल में संगीत क्या था ।

प्रश्न 3. मौर्य और बौध काल को संक्षिप्त में लिखिए।

प्रश्न 4. मुगुल काल में संगीत कैसे कैसे बदला समझाइए ।

प्रश्न 5. अंग्रेजों के काल के संगीत में क्या क्या बदलाव आये लिखिए।

इकाई – 2
ताल एवं ताल के दस प्राण
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
2 .1	भूमिका
2 .2	उद्देश्य तथा परिणाम
2 .3	ताल की परिभाषा
2 .3.1	ताल के दस प्राण
	स्वयं जांच अभ्यास 1
2 .4	सारांश
2 .5	शब्दावली
2 .6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2 .7	संदर्भ
2 .8	अनुशंसित पठन
2 .9	पाठगत प्रश्न

2.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में ताल और ताल के दस प्राण को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य का प्रयोग विशेष रूप से होता है। परन्तु सबसे पहले ताल और ताल के दस प्राणों के बारे में पता होना अति आवश्यक है, जिससे काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाती, कला, लय, यति, प्रस्तार के बारे में पत्ता चलता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य को सीखने से पहले तबला के दस प्राण को शुरू से ही बताया जाता है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी तबला वादन के संदर्भ में ताल और ताल के दस प्राणों की मूलभूत तकनीकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से तबला वाद्य बजा सकेगें।

2.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- तबला वादन के संदर्भ में ताल की मूलभूत तकनीकी जानकारी प्रदान करना।
- तबला वादन के संदर्भ में ताल के प्राण को जानने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी, तबला वादन के संदर्भ में ताल की मूलभूत तकनीक के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी, तबला वादन के संदर्भ में ताल के दस प्राणों को जानने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी में, वादन के संदर्भ में काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाती, कला, लय, यति, प्रस्तार के बारे में अपनी कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास कर पाएगा ।

- विद्यार्थी में वादन के अंतर्गत ताल के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी।

2.3 ताल की परिभाषा

ताल –

ताल शब्द संगीत ग्रंथों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

यथा

(1) ताल एक वाद्य के रूप में जिसे कास्यताल कहा गया है।

(2) ताल एक सामान्य हस्तक्रिया के रूप में।

(3) ताल एक सशब्द-क्रिया के रूप में।

(4) क्रियाओं के विशिष्ठ समूह के आवर्तन से बनने वाले कालखंड रूप में।

अति प्राचीन काल से लयधारणा ताल वाद्यों से की जाती रही है, इसके प्रामाणिक उद:रण प्राप्त होते हैं। ताल वाद्यों के अंतर्गत घन और अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक अवनद्ध वाद्यों के वादन का उद्देश्य उन पर तालधारणा द्वारा संगीत को रंजक बनाना तथा गीत, वाद्य नृत्य को स्थिरता एवं प्रतिष्ठा प्रदान करना रहा है। इसी अर्थ के अनुसार कुछ ग्रंथों में ताल की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

(1) तालोधन इति प्रोक्तः कला प्रात लयान्वितम्।
कलास्तस्य प्रमाणं हि विज्ञेयं तालयोगतः ।। नाट्यशास्त्र।।

(2) गीत वाद्यं च नृत्तं च यतस्ताले विराजते।
तस्माद् ताल स्वरूपं च वक्ष्ये लक्ष्यानुसारत ||
ताल शब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेन धातुना।
स ताल: कालमान यत् क्रियया परिकल्पनम्। संगीत समयसार।

(3) हस्तव्दय संयोगे वियोगेचापि वर्तते ।
व्याप्तमानो दशप्राणैः स कालतालसंज्ञकः ।। रागार्णव ।।

(4) तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धयीं स्मृतः ।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।। अभि. ताल मंजरी ।।

भारतीय संस्कृति की यह परम्परा रही है कि किसी भी विषय का दैवी शक्ति से संबंध स्थापित किया जाता रहा है। इसी तारतम्य में कुछ ग्रंथों में शिव के तांडव नृत्य से 'ता' तथा पार्वती के लास्य से 'ल' इन दो वर्णों के योग से ताल शब्द निष्पत्ति की व्याख्या की गई है।

अधिकतर ग्रंथों में 'तले भवस्तालः' के अनुसार शाब्दिक व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "स्थिरता स्थापित करना या प्रतिष्ठापित करना" । इस अर्थ के तल धातु के मध्य 'अ' प्रत्यय लगाने से ताल शब्द-रूप कहा जाता है । हम कह सकते हैं कि प्रतिष्ठापित करना इस अर्थ से बना ताल शब्द गायन, वादन और नृत्य को ताल से प्रतिष्ठापित कर स्थिरता प्रदान करता है एवं संगीत को मनोरंजक बनाता है ।

हाथों की संयोग वियोग क्रियाओं द्वारा काल और मान का मेल जो अंगों द्वारा छंद-वृत्तों को नियमित करने, संगीत में समय की प्रतिबद्धता को स्थापित करने एवं संगीत में लगने वाले समय को मापने के लिए मात्रा समूहों द्वारा निर्मित पैमाने को ताल कहते हैं । इसी ताल स्वरूप से आधार पर अवनद्ध वाद्यों पर निश्चित मात्रा संख्या के अनुसार निर्मित पाटाक्षर समूह को 'ठेका' कहते हैं ।

प्राचीन काल के ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में लघु (एक मात्रा काल), गुरू (दो मात्रा काल) एवं प्लुत (तीन मात्रा काल) इन ताल चिन्हों के आधार पर कुल पांच ताल (चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, संपक्वेष्टक तथा उद्धट्ट) को उद्धृत किया है तथा कला एवं मार्गों के अनुसार अवनद्ध वाद्यों पर उनका वादन बताया है । जाति के अनुसार ताल के त्रयस्त्र तथा चतुरस्त्र ऐसे मुख्य दो भेद भी बताये हैं । मार्ग के अनुसार इन तालों का वादन होने के कारण मध्यकाल के संगीताचार्यों ने इन्हें मार्गी-ताल के रूप में मान्यता दी । भरत के समकालीन संगीताचार्य दत्तिल ने चार मात्रिक आदि ताल का भी उल्लेख किया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि भरतोक्त मार्गी तालों के अलावा अन्य तालों का वादन भी उस काल में होता था । शायद इसी कारण मध्य-काल में भरतोक्त तालों को मार्गी ताल कहकर अन्य तालों को देशी तालों के अंतर्गत रखकर देशी ताल प्रचार में आये । मतंग काल से 'संगीत-रत्नाकर' रचयिता शारंगदेव के काल (12-13 वी सदी) तक देशी ताल काफी प्रचार में आ गये थे । शारंगदेव ने भिन्न-भिन्न प्रांतों, राज्यों के जन-जन में रूचि-पूर्ण एवं लोकप्रिय गायन-वादन-नृत्य प्रकारों के साथ प्रयुक्त होने वाले तालों को देशी ताल कहा एवं दृत (आधी मात्रा काल), लघु (एक मात्रा काल.) गुरू (दो मात्रा काल), प्लुत (तीन मात्रा काल) एवं

विराम चिन्हों के आधार पर, कम मात्रिक काल से अधिक मात्रिक काल तक के कुल 120 तालों का उल्लेख अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में किया है। 120 तालों और उनके भेद जानने के लिये 19 प्रत्यय (नियम) भी बताये हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में कालमान, सामाजिक परिस्थिति, राजनैतिक परिवर्तन जनता की विचारधारा एवं रूचि के अनुसार परिवर्तन अवश्यंभावी होता है। संगीत में भी यह परिवर्तन आया। प्राचीन मार्गी एवं देशी तालों के स्थान पर उत्तर भारत में प्रचलित गायन-वादन नृत्य के आधार पर नवीन तालों का प्रादुर्भाव हुआ। उन तालों के लिए पाटाक्षर समूह से 'ठेका' वादन प्रचार में आया। वादन प्रकार भी निर्मित हुए एवं उन वादन प्रकारों से अवनद्ध वाद्य वादन केवल संगत के लिये न रहकर 'स्वतंत्र वादन' रूप में भी प्रचार में आया। ताल के अवनद्ध वाद्यों पर वादन की दृष्टि से आवश्यक भरत-काल से मध्यकाल तक उद्धृत तालगत तत्वों जिनको वर्तमान काल में ताल के दश प्राण कहा गया है को समझना अत्यंत आवश्यक है।

2.3.1 ताल के दस प्राण

'अभिनव ताल मंजरी' ग्रंथ इन दश प्राणों का उल्लेख काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार के रूप में किया गया है।

(1) काल :-

काल क्या है ? यह तात्विक प्रश्न अत्यंत गहन विषय है। यह प्रकृति प्रदत्त तत्व है। यद्यपि इसका कोई आदि-अंत नहीं है तथापि इसे भूतकाल, वर्तमानकाल तथा भविष्यकाल के रूप में जाना जाता है। मनुष्य को कुछ स्थाई तथा अस्थाई घटनाओं के आधारपर काल का अनुभव होता है। काल जिसका हम अनुभव करते हैं वह अखंड-अनंत काल का एक कालखंड मात्र होता है, जो छोटा या बड़ा हो सकता है। कालखंड या काल के अनुभव को व्यवहार में लाने के लिए हम काल का घटित घटना या घटनाओं के आधारपर मापन करते हैं, जिसके लिए कोई प्रामाणिक कालमान निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि के अनुसार घटित घटनाओं के आधारपर काल-मापन करने का प्रयास मनुष्य सदैव से करता रहा है। भूत, वर्तमान, भविष्य, इस आधार पर, वर्ष-माह-दिवस, . रात्रि-घंटे, मिनिट-सेकण्ड इस आधार पर, रामायण

काल - महाभारत-काल-मुस्लिम काल - अंग्रेजकाल इस आधार पर या अकबर काल, बावर काल इन आधारों पर काल मापन किया जाता रहा है।

जब हम संगीत संबंध में काल का विश्लेषण करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि यह एक प्रायोगिक कला है जो क्रिया परम्परा से बद्ध है। संगीत में लगने वाले काल के लिए, उच्चारण-क्रिया एवं घटन-क्रिया ये दोनों लक्षण रूप या अवस्था रूप है। संगीत में उच्चारण से निर्मित ध्वनि-काल जिसका काल मापन अक्षरोच्चारण के आधार पर किया जाता है को स्वर-सापेक्ष तथा घटन-क्रिया से निर्मित काल जिसका मापन दो वस्तुओं के टकराव के आधार पर किया जाता है को स्वर-निरपेक्ष काल कहते है। मापना, गिनना इस अर्थ के 'मा' धातु से निर्मित 'मात्रा' इस शब्द से संगीत में लगने वाले स्वर-सापेक्ष तथा स्वर-निरपेक्ष काल को मान्य किया गया है। साधारणतः एक ह्स्व-अक्षरोच्चारण को एक मात्रा तथा दीर्घ-अक्षरोच्यारण काल को दो मात्रा-काल मान्य किया जाता है। दोनों प्रकार के कालमान हमेशा निश्चित काल के नहीं हो सकते। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर विभिन्न कालों में ग्रंथकारोने संगीत के लिए प्रामाणिक काल-मान स्थापित करने का विवेचन किया है।

संगीत संदर्भ में 'भरत' ने पांच निमेष के काल को एक मात्रिक काल-मान स्थापित कर, ताल संदर्भ में मात्रा तथा मात्राओं के योग से निर्मित कला रूप को मान्य कर लघु, गुरू, प्लुतादि कालमान स्थापित कियें। 'संगीत-रत्नाकर' ग्रंथ में शारंगदेव ने पांच लघुअक्षरोच्यारण काल को एक मात्रिक कालमान कहा है। रत्नाकर पर लिखित 'कलानिधि' टीका में इसके अलावा चार या छह लघुअक्षरोच्यारण काल को एक मात्रिक काल-मान के रूप मे संभाव्य कहा है।

प्राचीन एवं मध्यकाल के कुछ संगीत-ग्रंथों में ताल-काल संबंध में कालमापन के लिए मुहुर्त, कला, काष्ठा, निमेश अथवा तृष्टि, तत्पर, निमेश, काष्टा, कला अथवा पल, विपल, काकपद आदि स्वरूप से मात्रा काल के रूप में वर्णित किया है।

वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में तथा भास्कराचार्य ने अपने ग्रंथ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' में जिस प्रकार काल मापन का उल्लेख किया है, उसके अनुसार क्रमशः पांच निमेशकाल =16/15 सेकंड का एक मात्राकाल तथा पांच लघु-अक्षरोच्यारण काल = 1 सेकंड का एक मात्रा-काल होना परिलक्षित होता है। ताल-दश प्राण-दीपिका में आठ अक्षरोच्यारण काल को ताल संदर्भ में मात्रा कहा है। इस में दिये गये सूत्र के अनुसार एक मात्रा-काल = एक सेकंड ही होता है।

'भारतीय-संगीते-ताल ओ छंद' इस ग्रंथ के अनुसार -

10 प्लुत = 1 पल या 30 लघु = 1 पल

1 पल = 2.5 मि. या 30 लघु = 2.5 मिनिट या 150 सेकंड

30 लघु = 150 से. या 1 लघु = 5 सेकंड

1 लघुअक्षरोच्चारण = 1 सेकंड / वर्तमान में एक अक्षरोच्चारण 1= सेकंड।

'संगीत सूर्योदय' ग्रंथ में पंच लघु अक्षरोच्चारण काल को ही, मात्रा-काल कहा है। 'रस-कौमुदि ग्रंथ में अणुदृत, दृत, लघु, गुरु, प्लुत और काकपद के कालमान को ही व्यवहार्य बताया है। 'अभिनव ताल मंजरी' में हाथों की संयोग-वियोग क्रिया में व्याप्त काल को ही काल-मान के रूप में मान्य किया है। 'संगीत-समयसार' ग्रंथ में पार्श्वदेव ने क्षण-लव-काष्ठादि को मनोगा तथा आवापादि क्रिया काल को हस्तगा कहकर, हस्तगा कालमान को ताल संदर्भ में मान्य किया है।

यह निश्चित है कि केवल अक्षरोच्चारण काल या केवल क्रिया-काल के आधारपर ताल या संगीत संदर्भ में एक-मात्रा-काल स्थापित करना संभाव्य नहीं हो सकता कारण प्रत्येक व्यक्ति के अक्षरोच्चारण काल तथा क्रिया-काल में अंतर आना निश्चित ही सहज होगा। शीघ्र गति से अक्षरोच्चारण के आधारपर पांच-लघु-अक्षरोच्चारण काल को एक मात्रा रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी। जो मात्रा काल लगभग 1 सेकंड होता है।

वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति में एक अक्षरोच्चारण काल को एक मात्रा रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी है। अतः वर्तमान ताल संदर्भ में मध्य लय की एक मात्रा-काल का समय एक सेकंड होगा।

(2) मार्ग –

ताल-शास्त्र में प्रयुक्त 'मार्ग' शब्द लौकिक से ही लिया गया है, जिसका अर्थ है 'रास्ता'। यह रास्ता या मार्ग निश्चित ही दो स्थानों के मध्य की दूरी का द्योतक होता है। रास्ते की स्तिति या लंबाई के अनुसार ही उसे पार करने के उपायों को सोचा जाता है। रास्ता पार करने की गति में विविधता होती है। कभी या कोई भी उस दूरी को साधारण चाल से, धीमी चाल से, या शीघ्र चाल से पार कर सकता है।

संगीत-शास्त्र संबंध में गायन, वादन, नृत्य में प्रयुक्त काल के एक आवर्तन को विविधता में, आरंभ से अंत तक पूर्ण करना किसी एक मार्ग या मार्गों से ही संभव है।

ताल-प्रयोग संदर्भ में मार्ग यह शब्द ताल की कुल मात्रा-संख्या को संगीत का साथ देते हुए विविधता से पार करना ही है। मार्ग के आधार पर ही ताल के एक आवर्तन का, काल एवं कला-प्रमाण स्पष्ट होता है। मार्ग यह रीति का पर्यायाची है। मार्ग का प्रयोग स्वरांतर्गत गायकी में अलंकारों आदि के प्रस्तुतिकरण के संदर्भ में भी कहा गया है। मार्गों के द्वारा ताल वादन में विचित्रता उत्पन्न की जा सकती है। तभी प्राचीन ग्रंथों में मार्ग प्रयोग से विभिन्न लयों, लयकारियों तथा यति की उत्पत्ति संभाव्य कही गई है। मार्गों का काल नियमन केवल अक्षरोच्चारण

के आधार पर कठिन मानकर हस्त क्रियाओं तथा अवनद्ध वाद्यों पर विभिन्न प्रहारों के आधार पर मार्गों का नियमन उल्लिखित किया गया है।

स्थापित लय की एक मात्रिक कला निश्चित (ध्रुव) होती हैं इस कारण भरत ने मार्ग रूप में मान्य नहीं किया है। कुछ ग्रंथकारों ने इसका ध्रुवमार्ग के रूप में उल्लेख किया है। प्राचीन काल से मध्य काल तक के ग्रंथों में ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में तीन से छह मार्गों तक का उल्लेख किया है।

यथा

'नाट्यशास्त्र' में - चित्र, वार्तिक, दक्षिण।

'रत्नाकर' में - ध्रुव, चित्र, वार्तिक, दक्षिण।

'समयसार' में - देशी संदर्भ में चित्र, वार्तिक, दक्षिण, चित्रतर, चित्रतम्, अतिचित्रतम्।

'रसकौमुदि' में - ध्रुव, चित्र, वार्तिक, दक्षिण।

'संगीत सूर्योदय' में - ध्रुव, चित्र, वार्तिक, दक्षिण, क्षिप्र।

'संगीत दर्पण एवं सारामृत' में - दक्षिण, वार्तिक, चित्र, ध्रुव, चित्रतर, चित्रतम्।

'नाट्यशास्त्र' में भरत ने गीत संदर्भ में दो अक्षरोच्यारण के मध्य लगने वाले काल को तथा ताल संदर्भ में दो या दो से अधिक मात्रा काल को कला या क्रिया कहा है। अर्थात गीत संदर्भ के दो अक्षरोच्चारण के बराबर एक कला या एक क्रिया या एक मात्रा बनती है। भरत ने संगीत में ताल प्रयोग के दृष्टि से गुरू को एक कला बताया है तथा उसी के आधार पर तालोत्पत्ति बताई है। चित्र मार्ग में दो मात्रिक, वार्तिक मार्ग में चार मात्रिक तथा दक्षिण मार्ग में आठ मात्रिक कला या क्रिया बताई है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में एक मात्रिक ध्रुव मार्ग भी देशी संदर्भ में बताया है। इसी देशी-ताल प्रकरण के आधार पर अन्य ग्रंथकारोने अलग-अलग मार्ग बताये हैं। मध्यकालीन ग्रंथकारोने जिन चित्रचर, चित्रतम और अतिचित्रतम् मार्गों का उल्लेख किया है उसे भरत ने द्विकल = एक मात्रा - काल में दो अक्षर या तालवर्ण, चतुष्फल = एक मात्रा-काल में चार तालवर्ण, चतुष्कल = एक मात्रा-काल में आठ वर्णों का प्रयोग बताया है।

मार्ग - भरत के अनुसार

(1) चित्रमार्ग -

ताल संदर्भ में दो मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में चार अक्षरोच्यारण काल)

(2) वार्तिक मार्ग –

ताल संदर्भ में चार मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में आठ अक्षरोच्यारण काल)

(3) दक्षिण मार्ग -

ताल संदर्भ में आठ मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में सोलह अक्षरोच्यारण काल)

(मध्य कालीन ग्रंथकारों के अनुसार)

(4) ध्रुव मार्ग –

ताल संदर्भ में एक मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में दो अक्षरोच्यारण काल)

(5) चित्रतर मार्ग –

ताल संदर्भ में ½ मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में एक अक्षरोच्यारण काल)

(6) चित्रतम् मार्ग –

ताल संदर्भ में ¼ मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में ½ अक्षरोच्यारण काल)

(7) अतिचित्रतम् मार्ग –

ताल संदर्भ में 1/8 मात्रिक काल की एक क्रिया या कला (गीत संदर्भ में ¼ अक्षरोच्यारण काल)

मध्यकालीन ग्रंथों में उल्लिखित चित्रतर, चित्रतम तथा अतिचित्रतम मार्गों का अध्ययन करें तो भरत के ताल के द्विकल, चतुष्कल तथा अष्टकल स्वरूप सहज दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन काल से मुख्य लय तीन प्रकार की बताई है, विलंबित-मध्य-दृत। मार्ग के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मध्यलय में स्थापित काल को चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण इन मार्गों द्वारा कितनी विलंबित लय में तथा चित्रतर, चित्रतम् और अतिचित्रतम् मार्गों द्वारा कितनी दृत लय में स्थापित किया जाना चाहिये।

वर्तमान काल में किसी ताल का विलंबित, अतिविलंबित तथा दृत, अतिदृत में वादन प्रयोग मार्ग से ही संबंधित है। 24 मात्रा का एकताल, 48 मात्रा का एकताल ऐसा विलंबित (मार्ग) वादन तथा दुगुन, चौगुन आदि दृत लधकारियों का वादन प्राचीन मार्गों का अनुसरण ही है।

(3) क्रिया –

साधारण लौकिक व्यवहार में कुछ किये जाने का बोध 'क्रिया' शब्द से होता है। क्रिया का कोई उद्देश्य होता है जिसे कार्य रूप में जाना जाता है। क्रिया की घटना किसी कार्य के लिये होने के कारण क्रिया समाप्ति पश्चात उसका फलित सामने आता है। प्रत्येक कार्य-व्यवहार क्रिया के बिना संभव नहीं होता। प्रत्येक कार्य-व्यवहार के लिये क्रिया एवं वस्तु इन दो तत्वों की आवश्यकता होती है।

संगीत (गायन) के व्यवहार की दृष्टि से स्वर (वर्ण) यह वस्तु तथा उसके उच्चारण की क्रिया की निरंतरता व क्रमबद्धता आवश्यक होती है। इसी क्रमबद्धता से संगीत का काल-तत्व जुड़ा होता है। संगीत में लगने वाले समय को नापने के लिए सर्वप्रथम लघु-गुरू अक्षरोच्यारण क्रिया का प्रयोग होकर विकास के साथ-साथ काल मापन के लिये हस्त क्रियाओं का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक ग्रंथों में लयबद्ध वेद पठन के लिये चुटकी वादन, अंगुली प्रदर्शन, तथा हाथ को ऊपर-नीचे करने की क्रियाओं की व्यवस्था थी।

संगीत में ताल संदर्भ में हाथ तथा अंगुलियों काल प्रदर्शन की रीति को क्रिया कहते हैं। 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में सर्वप्रथम ताल के लिये प्रयुक्त क्रियाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक के ग्रंथों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि ताल और उसमें लगने वाले काल को नापने के लिए जो हाथों और अंगुलियों का प्रयोग होता है वह दो प्रकार का है। सशब्द तथा निःशब्द। प्राचीन काल से मध्य-काल के लगभग सभी ग्रंथों में इन दोनों प्रकार की हस्त-क्रियाओं के चार-चार भेद (प्रकार) बताये हैं।

यथाः

निःशब्द क्रियाएँ –

(1) **आवाप -**

उत्तान हाथ ऊपर उठाकर अंगुलियों को सिकोड़ना।

(2) **निष्क्राम** –

अधोगत हाथ की अंगुलियों को नीचे फैलाना।

(3) **विक्षेप** –

अधोगत हाथ को (फैली अंगुलियों को) दाहिनी ओर करना।

(4) **प्रवेशक** –

अधोगत हाथ की अंगुलियों   को सिकोड़कर पुन्हः उत्थान।

सशब्द क्रियाएँ -

(1) **धृवा -** एक मात्रा विराम के लिये किया जाने वाला पात (अंगुली से हाथ पर या चुटकी बजाकर)

(2) **शम्या -** दायें हाथ से बायें हाथ पर ताली देना।

(3) **ताल -** बायें हाथ से दायें हाथ पर ताली देना।

(4) **सन्निपाल -** दोनों हाथों को एक साथ लाकर ताली देना।

भरत ने 'धृवा' सशब्द क्रिया को स्पष्ट नहीं किया है तथापि अभिनव ने ध्रुवा इस सशब्द क्रिया को, चुटकी बजाकर हाथ को नीचे लाना के रूप में उल्लेख किया है। निःशब्द क्रियाओं को सशब्द क्रियाओं का विस्तारक बताया है। 'शारंगदेव' ने भी अभिनव का ही क्रिया रूप में अनुसरण किया है। शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' में मार्गानुसार प्रयुक्त कलाओं के अनुसार 1 से 8 तक की क्रियाओं (कलाओं) को धृवका, सर्पिणी, कृष्णा, पद्मिनी, विसर्जिता, विक्षिप्ता, पताका तथा पतिता नामों से उल्लिखित किया है। मध्यकाल के लगभग सभी ग्रंथों में भरत व शारंगदेव वर्णित क्रियाओं का ही उल्लेख किया गया है।

मुस्लिम काल में उत्तरी भारत में हुए राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल के कारण आये बदलाव से भारतीय संगीत पर भी इसका प्रभाव पड़ा और ताल एवं ताल के स्वरूपों में अंतर आता गया। प्राचीन सशब्द तथा निःशब्द क्रिया तो कायम रही किन्तु उसका स्वरूप ताली एवं खाली रूप में रह गया। गीतांग के अनुसार निर्मित तालों के अंग निर्माण होकर उनकी सशब्द (ताली) तथा निशब्द (खाली) क्रिया स्वरूप को स्थापित किया गया। प्रत्येक अंग (ताली या खाली) में (धृवा समान) अंगुलि नियामक क्रियाओं का प्रयोग कर अंग की मात्रा बताई जाती है। प्राचीन तथा मध्यकाल के उस नियम जिसके अनुसार प्रत्येक अंग में क्रिया चिन्हों का प्रयोग अंग की प्रथम मात्रा पर किया जाता था, वर्तमान में भी वैसा ही है।

जैसे

1	2	3	4	5	6
धा	धी	ना	धा	ती	ना
X			0		

प्राचीन काल में चिन्हों के रूप में क्रिया के प्रथम अक्षर को स्थापित किया जाता था। 'वर्तमान में ताली अंग को क्रमशः X, 2, 3, 4 स्वरूप में दर्शाया जाता है। खाली स्वरूप में उसके चिन्ह (0) को ही दर्शाया जाता है। इससे यह लगता है कि 'शारंगदेव' के कथन 'निःशब्द क्रियाएँ' सशब्द क्रिया की विस्तारक होती है का पालन हो रहा है। दक्षिणात्य ताल पद्धति में भी निःशब्द, क्रियांग की मात्राओं को सशब्द क्रियांग की मात्राओं के साथ जोड़ने का प्रचलन है।

प्राचीन एवं मध्यकालीन कुछ समान मात्रिक तालों को गीतांग स्वरूप में प्रदर्शित करने के लिए, उन तालों के अंगों में क्रिया परिवर्तन से दर्शाया जाता था। जैसे : मार्गीताल-चाचपुट तथा उद्धट। वर्तमान के भी कुछ समान मात्रिक तालों में अंग एवं क्रिया स्वरूप में अंतर दिखाई देता है।

यथा

झपताल-सूलताल, आडाचौताल-धमार दीपचंदी।

प्राचीन एवं मध्यकाल में अवनद्ध वाद्यों पर वादन करते समय क्रियाएँ अदृश्य रहती थी परन्तु वर्तमान काल के मुख्य-मुख्य तालों में पाटाक्षरों के आधार पर खाली दर्शक बोलों को दर्शाकर ताल के निःशब्द क्रियाओं के अंगों को पहचाने जाने का सरलीकृत प्रयत्न किया गया है।

(4) अंग –

साधारण व्यवहार में अंग शब्द दो रूपों में प्रयुक्त किया जाता है, एक सम्पूर्ण रूप तथा दूसरा विभाग या भाग रूप में। भारतीय संगीत में भी अवनद्ध वाद्य और उसके तालगत तत्वों तथा वादन प्रकारों के अंतर्गत इस शब्द का प्रयोग दो प्रकार से किया गया है। 'मृदंग' इस शब्द का अर्थ माटी का बना जिसका शरीर है, ऐसा होता है। यहां संपूर्ण शरीर रूप में, उसी प्रकार ताल के विभाग यहां 'अंग' अवयव स्वरूप में प्रयुक्त होता है।

संगीत एवं ताल संदर्भ में अवयव या अंग रूप का उल्लेख प्राचीन काल से दृष्टिगोचर होता है किन्तु प्राण रूप में अंग यह शब्द मध्यकाल में प्रचलित हुआ प्राचीन काल में इसे कला भी कहा गया है। गीत के स्वरूप के अनुसार उसके लिये कालमान रूपी मात्रा संख्या के आधार पर निश्चित मात्रिक ताल की रचना की जाती है। प्राचीन मार्गी, मध्यकालीन देशी तथा वर्तमान काल के ताल स्वरूप को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि काल-मापक मात्रा के अंशात्मक भाग (केवल देशी स्वरूप में)

जैसे

½ , ¼ तथा उसी प्रकार गुणित संख्या जैसे 2, 3, 4 आदि के योग या खंडन द्वारा ताल के लिये बनाये गये भागों को अंग कहते हैं।

'नाट्यशास्त्र' में "अंगभूता हि तालस्य यति पाणिलयः स्मृता" कहकर, 'दत्तिलम्' में 'तत्र (ताल) ज्ञेया कलाः पाताः पादभागास्तथैवच' कहकर तालावयवों का उल्लेख किया है। मध्यकालीन लगभग सभी ग्रंथों में अणुदृत, दृत, विराम, लघु, गुरू, प्लुत, एवं काकपद इन मात्रा के खंडित या गुणित मात्राचिन्हों को अंग कहा गया

है। प्राचीन तथा मध्यकालीन संगीत में प्रचलित तालों के मात्रा चिन्ह स्वयंमेव तालांग कहलाते थे। जैसे 'चच्यत्पुटाः' मार्गी-ताल के चिन्ह ss I s', थे तथा इसकी कुल मात्रा संख्या आठ तथा चार भाग क्रमशः 2, 2, 1, 3 मात्राओं के थे जिन्हें हम ताल-अंग कह सकते हैं। उसी प्रकार 'रतिलील देशी-ताल के चिन्ह ।। ss थे इसकी कुल मात्रा संख्या 6 तथा चार भाग क्रमशः 1, 1, 2, 2 मात्राओं के थे जिन्हें ताल अंग कह सकते हैं।

'अमीर खुसरों' ने 14-15 वी सदी में प्रचलित गीत प्रकारों के अनुसार नवीन तालों की रचना की जिसमें मार्गी-देशी तालों के भारतीय परम्परा के अनुसार तालांगों का प्रयोग नहीं किया है। मुस्लिम काल में उत्तरी भारत में मुस्लिम संस्कृति एवं गायन-वादन प्रचार में आया, उसी अनुरूप गीत प्रकार एवं ताल रचना भी प्रचार में आई। 18 वी सदी के उत्तरार्द्ध तथा 19 वी सदी के पूर्वार्द्ध काल में, उत्तरी भारत में फैले इस गायन एवं वादन के प्रचलन का अध्ययन पं. वि. ना. भातखंडे एवं पं. वि. दि. पलुस्कर इन संगीत विद्वानों ने किया। प्रचलित तालों को एकत्र कर अपनी सोच के अनुसार तालांकन को लिपिबद्ध किया। प्राचीन ताल-चिन्हों का अंग स्वरूप में यद्यपि तालांकन में समावेश नहीं किया गया है तथापि प्राचीन-मध्यकालीन परम्परा का पालन हुआ है।

उत्तर भारतीय ताल लिपि पद्धति में ताल के अंगों को चिन्हों के स्थान पर मात्राओं अनुसार दर्शाया गया है। यथा-दादरा ताल के प्राचीन परम्परा अनुसार s's' चिन्ह या अंग (भाग) होंगे परन्तु उ. भा. ताल लिपि के अनुसार इसे 1, 2, 3 / 4, 5, 6 इस प्रकार इसे 3-3 मात्राओं के 2 भागों में बाँटकर दर्शाया गया है। प्रत्येक भाग को अलग दर्शाने के लिये प्रत्येक भाग या अंग के मध्य खड़ी लकीर का प्रयोग कर भागों को स्पष्ट किया जाता है। इन भागों के अंगों की क्रियाओं को भी स्पष्ट किया जाता है।

(5) ग्रह –

संगीत में 'ग्रह' शब्द ग्रहण करना (प्रारंभ करना) इस अर्थ में प्रयोज्य है। जहाँ से ग्रहण किया गया वह ग्रह स्थान। गायन और ताल वादन दोनों ही कलाओं का ग्रहण (आरम्भ) जिस स्थान से किया जाये उसे 'ग्रह' कहते हैं। भरत ने गायन संदर्भ में गीत के प्रवृत्ति (प्रारंभ) स्थान (अंश स्वर) को ग्रह कहा है।

ताल संदर्भ में ताल का ग्रहण (प्रारंभ) स्थान, सम-स्थान अथवा ताल की प्रथम मात्रा होगा। गायन वादन के साथ ताल-वादन की संगत के परिप्रेक्ष्य में 'ग्रह' अध्ययन आवश्यक होगा। इस कारण दोनों में अंतर आना स्वाभाविक है। गीत का अंश स्वर (ग्रह) ताल-वादन की संगत में ताल की सम (ग्रह) के साथ भी आ सकता है अथवा गीत का 'ग्रह' स्थान, ताल के ग्रह (सम) स्थान के पूर्व या पश्चात भी आ सकता है। उसी प्रकार ताल का 'ग्रह' (सम) स्थान और गीत का ग्रह (अंश) स्थान गायन के ग्रहण स्थान से पूर्व या पश्चात भी आ सकते हैं। अवनद्ध वाद्य से गायन-वादन-नृत्य की संगत करते समय गायन-वादन- नृत्य के प्रारम्भ स्थान तथा अवनद्ध वाद्य पर ताल-वादन ग्रहण (सम) स्थान में अंतर आता है और इसी कारण दोनों के सामंजस्य से एक से अधिक 'ग्रह' स्थान बनते

हैं। इस प्रकार सम, अतीत और अनागत ऐसे 'ग्रह' स्थान प्राप्त होते हैं। अतीत और अनागत को विषम (विसम) स्थान भी कहा जाता है। उदः –

सम-ग्रह - गीत और ताल का ग्रहण-स्थान जब सम हो।

गीत का प्रारम्भ -	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	1
	x										x
ताल का प्रारंभ-	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना	धी
	x		2			0		3			x

अतीत ग्रह -

ताल के ग्रहण-स्थान (सम) के पूर्व गीत का प्रारंभ हो या गीत का उठान (आरंभ) के बाद ताल का ग्रहण-स्थान (सम) आवे।

गीत का प्रारंभ -	8	9	10	1	2	3	4	5	6	7
ताल का प्रारंभ -	धी	धी	ना	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना
-	3			X		2			0	

अनागत ग्रह गीत का प्रारंभ -

ताल की सम (ग्रह) निकल जाने के पश्चात गीत का प्रारंभ हो

गीत का प्रारंभ -	3	4	5	6	7	8	9	10	1	2
ताल का प्रारंभ -	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना	धी	ना
	2			0		3			X	

भरत ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में 'ग्रह' के स्थान पर 'पाणि' शब्द का उल्लेख कर उसके तीन प्रकार- समपाणी, अवपाणि, उपरिपाणि बताये हैं। इनका प्रयोग गीत-वाद्य के समन्वय या आश्रय स्वरूप में बताया है। मध्यकाल से वर्तमान काल तक के ग्रंथों में पाणि के स्थान पर 'ग्रह' शब्द का उल्लेख कर उसकी व्याख्या की गई है।

मध्यकालीन ग्रंथ 'रसकौमुदि में सम, अतीत, अनागत और विषम ऐसे चार ग्रह स्थानों का उल्लेख किया गया है। अन्य कुछ ग्रंथों में भी चार प्रकार के 'ग्रह' स्थान का उल्लेख मिलता है। विषम ग्रह गीत एवं ताल वादन के समान बल स्थान से प्राप्त होता है। अर्थात विषम ग्रह का कोई नियम नहीं है। गीत और ताल-वादन के बल के

आपसी संबंध (समाश्रयः) के आधार पर विषम ग्रह प्राप्त होता है। अर्थात इन का कोई निश्चित स्थान या संख्या मान्य नहीं है। 'संगीत-दर्पण' ग्रंथ में 'विषम' ग्रह संदर्भ में अनुताल, विताल, प्रतिताल, का उल्लेख किया है और विषम ग्रह की उत्पत्ति प्रतिताल से बताई है। गायन के किसी स्थान के बल के अनुसार ताल-वादन में भी विशेष प्रकार के बल-स्थान दर्शाने से जो (समाश्रय) सम-बल-स्थान प्राप्त होते हैं उन्हें विषम ग्रह कह सकते हैं। भरत ने भी (पाणि) ग्रह स्थान के लिये 'गीतवाद्यसमाश्रयः' कहकर उल्लेख किया है।

केवल ताल-वादन करते समय 'ग्रह' स्थानों का उल्लेख इस प्रकार किया जाता है। सम-स्थान पर ताल के प्रथम वर्ण का विशेष बलयुक्त वादन करने पर 'सम-ग्रह', सम-स्थान निकल जाने पर उसकी अगली यानि दूसरी मात्रा पर बल देकर वादन करना 'अतीत-ग्रह' तथा समस्थान के पूर्व की यानि ताल की अंतिम मात्रा पर बल देकर वादन करना 'अनागत-ग्रह' के रूप में परिभाषित किये गये हैं। वर्तमान में एक नवीन 'अनाघात' ग्रह का भी उल्लेख मिलता है जिसमें सम के स्थान पर 'वर्ण' का वादन न करते हुए केवल हाथ से बल देकर सम दर्शायी जाती है। कुछ-कुछ गुणिजन इसे ही 'अनागत' भी कहते हैं।

वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत में चारों प्रकार के ग्रहों का प्रयोग होता है। बल स्थान की भिन्नता से ये चारों ग्रह प्रयोज्य होते हैं। गीत के शब्दों के बल भेद को ताल वादन के वर्णों में बल देकर सामंजस्य स्थापित करना जिससे संगीत में लयसाम्य, बलसाम्य, अंग-साम्य, यति साम्य स्थापित कर रंजकता उत्पन्न हो सके यह 'ग्रह' का उद्देश्य होगा। अतः हम कह सकते हैं कि 'ग्रह' यह ताल-वादन एक प्राणभूत घटक है।

(6) जाति –

'जाति' शब्द संस्कृत के जन (जा) से बना है। इसका अर्थ है जन्म लेना, उत्पन्न होना या स्वरूप प्राप्त करना। संगीत में जाति गायन प्राचीन काल से प्रचलित है। संगीत में राग स्वरूप के लिये मुख्य तीन (औडव, षाडव, संपूर्ण) जातियाँ मान्य है। 'जाति' से राग को विशेष स्वरूप प्राप्त होता है।

यह सर्वमान्य है कि गीत, वाद्य और नृत्य के चलन के अनुसार ताल व्यवहार होना चाहिये। प्राचीन काल से ही ताल व्यवहार गीत, वाद्य और नृत्य को प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिये ही किया जाता रहा है। गीत रचना तथा उसके चलन के अनुसार ही किसी ताल की कुल मात्राएँ तथा उसके अंगों के रचना की जाकर उसके स्वरूप की निर्मिती होती है। तालावर्तन के अंगों तथा अंगों के मात्राओं की निश्चित प्रमाणबद्धता ही ताल की 'जाति' कही जाती है। संगीत में लगने वाले समय की इकाई 'मात्रा' से निर्मित लघु-गुरू प्लुत आदि कालखंडों के आधार पर तालोत्पत्ति का उल्लेख मिलता। किसी गीत के लिये आवश्यक मात्रा संख्या, गीत की रचना तथा उसके वजन अनुसार इन्हीं कालः खंडों (चिन्हों) के संयोग से ताल बने। इन्हीं ताल के कालखंडों आधार पर बने ताल स्वरूप के अनुसार ताल जाति मान्य की जाती है।

प्राचीन कालीन भरत रचिन ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने जिन तालों का उल्लेख किया है उन्हें ताल के चतुरस्त्र, त्रयस्त्र एवं मिश्र प्रकार कहा है। भरत ने संकीर्ण ताल प्रकार का उल्लेख मात्र कर उन्हें संगीत के लिए उपयुक्त नहीं माना। इन संकीर्ण प्रकार के तालों की उत्पत्ति मुख्य तालों में से लघु अथवा गुरू को हटाने पर बताई है और ये ताल पांच, सात, नौ, दस तथा ग्यारह मात्रिक बताये हैं।

भरत काल के पश्चात 14 वी शताब्दि तक के संगीत-चूड़ामणि, संगीत-रत्नाकर, संगीत-समयसार, संगीत-मकरंद आदि ग्रंथों मे ताल के चतुरस्त्र, त्रयस्त्र, मिश्र, खंड एवं संकीर्ण (संकर) इन पांच प्रकारों के तालों का उल्लेख एवं विवरण प्राप्त होता है।

15 वी 16 वी शताब्दि के ग्रंथों (नर्तन-निर्मय, रसकौमुदि, संगीत-दर्पण, संगीत-सूर्योदय) में ताल भेदों (प्रकारों) के स्थान पर ताल जाति का उल्लेख सर्वप्रथम प्राप्त होता है। इन ग्रंथों तथा इसके बाद लिखे गये लगभग सभी ग्रंथों में इन्हीं ताल की पांच जातियों का उल्लेख एवं विवरण प्राप्त होता है। इन ग्रंथों में तालांगों के मिश्रण या भंजन का जाति निर्माण के संबंध में कही उल्लेख नहीं है। चतुरस्त्र, त्रयस्त्र, मिश्र, खंड और संकीर्ण जाति तालों का आधार वर्णों को मानकर 4, 3, 7, 5, 9 वर्णों के मान को इसका आधार माना गया है। इन वर्गों के प्रयोजन से ताल की कुल मात्राएँ होंगी या ताल के प्रत्येक अंग में इन मात्रिक वर्णों की व्यवस्था होगी यह स्पष्ट नहीं किया गया है। उत्तर भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण निर्मित गीत प्रकारों के आधार पर प्राचीन एवं मध्यकालीन तालों से हटकर नवीन तालों का निर्माण किया गया। इनमें से कुछ ताल प्रचीन तथा मध्यकालीन कुछ तालों से मेल खाते हैं। इन नवीन तालों के लिये पाटाक्षर निश्चित कर, पूर्ण आवर्तन के ताल-पाटाक्षरों को ठेका कहा जाने लगा।

वर्तमान ताल-पद्धति में भी किसी ताल को किस आधार पर कौनसी जाति का कहा जाये यह स्पष्ट विवेचन प्राप्त नहीं होता है किन्तु जाति के आधार पर तालों का अध्ययन करने पर प्राचीन 'गुरू इकाई' की मान्यता दृष्टिगोचर होती है। चार मात्रिक तालांगों के तालों (केहरवा, तीनताल आदि) को चतरस्त्र तथा तीन मात्रिक अंगो के ताल दादरा को त्रयस्त्र जाति के अंतर्गत सहजता से स्थापित किया जा सकता है। अन्य तालों की जाति 'गुरू' इकाई की मात्रा संख्या दो (2) से किसी ताल की कुल मात्रा संख्या को विभाजित करते रहने पर अंत में जो संख्या (अंक) प्राप्त होगी वही उस ताल की जाति मान्य होगी।

यथा -

झपताल - मात्रा 10 + 2 = 5 खंड जाति।

एकताल - मात्रा 12 + 2 = 6 + 2 = 3 त्रयस्त्र जाति।

आडा चारताल - मात्रा 14 + 2 = 7 मिश्र जाति (रूपक, तीव्रा भी मिश्र जाति)

तीनताल - मात्रा 16 + 2 = 8 + 24 + 2 = 2 द्वयस्त्र जाति न होने से चतुरस्त्र उसी प्रकार 9, 11, 13, 15, 17 मात्रिक सभी ताल संकीर्ण जाति के मान्य हैं।

यद्यपि झपताल के 2,- 3, 2-3 खंड हैं, एकताल के 2 - 2 के खंड हैं, झूमरा के 3 - 4, 3 - 4 खंड हैं, धमार के 5 - 2, 3 - 4 ऐसे खंड हैं तथापि इन तालों की जाति क्रमशः खंड, त्रयस्त्र, मिश्र तथा संकीर्ण होगी।

(7) कला –

किसी क्रिया या कृति के लिये निर्मित ऐसी अभिव्यक्ति जिससे उसका अर्थ, भाव, लयात्मकता, सौंदर्य स्पष्ट होकर रंजकत्व प्राप्त हो सके कला कहलाती है। वैसे कला यह शब्द अनेक अर्थों में प्रचलित है। जैसे- चंद्र की कलाएँ, अंश, काल का संगीत में माप, अभिव्यक्ति, क्रिया रूप, कुशलता आदि। प्राचीन काल से संगीत (ताल) में भी कला शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे किया गया है। जैसे - निःशब्द क्रिया, क्रियामात्रा, गुरू-इकाई, लघु, मात्राओं का योग, अंशभाग आदि।

संगीत के अंतर्गत गायन, वादन, नृत्य ये तीनों कलाएँ आती हैं क्योंकि ये अभिव्यक्ति द्वारा रंजकता प्रदान करती हैं। संगीत में लगने वाला समय ताल द्वारा मापा जाता है। यह समय (काल) परिच्छेद्य क्रिया द्वारा होकर, निःशब्द तथा सशब्द क्रिया रूप में मात्राओं की कुल संख्या के आधार पर ताल कहलाता है।

भरत ने ताल को 'कला-पात लयान्वित् कहकर ताल की लय का प्रमाण 'कला' को माना है। स्थापित लय में मात्राकाल, लयों के अनुसार मात्रा काल, मार्गों के अनुसार काल, द्विकलादि में अंशभाग का काल-प्रमाण, यतिनुसार काल प्रमाण ये सब ताल प्रस्तुति को व्यवस्थित करने के लिए हस्तक्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त ताल नियमन की प्रस्तुति कही गयी। ये सहायक, नियामक काल रूपी हस्तक्रियाएँ ही कला कहीं गई।

प्रचीन ग्रंथों में मात्राओं के योग, कालकृत लय, मध्यलय के लिये स्थापित काल- प्रमाण, गुरू काल, एक वर्णोच्चार, पांच लघु अक्षर उच्चारण काल, मध्यवर्ती काल, आवापादि निःशब्द क्रियाएँ, आदि स्वरूपों में कला की व्याख्या की गई है। भरत ने पंचनिमेष काल की एक मात्रा (संगीत संदर्भ में) को लघु कहकर मात्राओं के योग से ताल संदर्भ में 'कला' कही है। इन्हीं मात्रिक कलाओं 2, 4, 8 के अनुसार चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण मार्गों के अनुसार ताल वादन बताया है। द्विकल-चतुष्कलादि (ताल के) स्वरूप के अनुसार एक मात्राकाल में जितनी वर्ण क्रियाएँ (2, 4, 8 या 3, 6) होंगी (अर्थात ½ , ¼ , 1/8 , 1/3 , 1/6 मात्रिक काल) उन्हें भी 'कला' कहा है।

अभिनव ने निमेष काल को अति-सूक्ष्म कालमान कहकर हस्व अक्षर उच्चारण काल को मात्रा कहकर उसे ही कला रूप में मान्य किया है। शारदेव ने भी 'धृवके मात्रिका कला' कहकर स्थापित या मध्य-लय के एक-मात्रिक-काल को कला कहा है। 'संगीत-सूर्योदय' ग्रंथ में अक्षर (वर्ण) या अक्षरों (वर्णो) के अनुसार अंगुलि नियमन को कला कहा है।

प्रचीन काल से ग्रंथों में उल्लिखित 'कला' की परिभाषाओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि, 'कला-विचार' अक्षरोच्यारण काल, मात्राकाल, क्रियाकाल आदि से संबंधित लक्षणों पर आधारित है। यह स्पष्ट है कि कला और काल का घनिष्ट संबंध है।

स्वरों को, अलंकारों को, तानो को, गीत के शब्दों को मात्रा, मात्राएँ या मात्राभाग के अनुसार स्थापित या प्रस्तुत करने की क्रिया ही कला है। उसी प्रकार मात्राकाल, मार्ग काल, लय काल, द्विकलादि के काल, यति प्रमाण काल, आदि को स्थिरता से स्थापित करने की नियामक हस्त या वादन क्रिया ही कला होगी।

ताल प्रस्तुतिकरण में ताल की मात्राएँ, तालांग, तालवर्ण, ताल की लय, लय में वर्णों के सहयोग से लयकारि, गति-परिवर्तन, यति-प्रयोग, लयांग वर्ताव, मात्रा विच्छेदन, मात्रा का वर्धन, वर्ण भेद आदि का विभिन्न क्रिया स्वरूप में प्रस्तुत करना ही 'कला' होगी।

(8) लय –

लय यह शब्द 'ली' इस धातु से बना है। 'ली' इस धातु के कई अर्थ होते हैं। यथा - विलीन होना, विश्रांति, एक रूप होना। अमरकोष में संगीत व्यवहार संदर्भ में एकरूप या विलीन होना ऐसा अर्थ दिया गया है। एकरूप या विलीन होने के लिये घटकों की आवश्यकता होती है। संगीत संदर्भ में ये घटक काल दर्शक होकर उनमें प्रमाण-बद्धता भी आवश्यक है। कालदर्शक घटकों की घटन क्रिया के मध्य समान विश्रांतियुक्त कालाधिष्ठान् से क्रियाओ को क्रमवार चलित रखना एक समान गति को जन्म देता है। 'अमरकोष' में कहा गया है - 'कालक्रियामानं लय-साम्यं' अर्थात समान (समकाल) क्रियाओं द्वारा मापा गया काल (मापी गयी गति) ही लय है।

साधारण रूप मे समय की समान गति को लय कहा जाता है। यह समान गति समकालिक (दो क्रियाओं के मध्य निरन्तर समकाल) क्रियाओं पर आधारित होगी। यह क्रियाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं - स्वस्-सापेक्ष (उच्चारण क्रिया पर आधारित), तथा स्वर-निरपेक्ष (हस्त क्रिया अथवा वादन क्रिया पर आधारित)। इसी आधार पर लय-व्याख्या का विस्तृत विवचेन किया गया है। ह्रस्व एवं दीर्घ अक्षरोच्यारण (कं का, कि - की, कु-कू) के कालमान में 1 : 2 का अनुपात रहता है। वैदिक साहित्य (संगीत) में उच्चारण रीतियों में अन्तर कर 1, 2, 3 अक्षरोच्यारण काल के आधार पर लय निर्देशित करने की परिपाठि थी। भरत ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में भी इसका उल्लेख किया है - "ह्रस्वं दीर्घं प्लुत चैव त्रिविधं च अक्षर स्मृतं"। दो अक्षरोच्यारण क्रिया के मध्य लगे वाला समय (विश्रांति) जितना कम होगा उतनी गति शीघ्र तथा अधिक होने पर धीमी (ठाह) गति होगी। शीघ्र और ठाह गति को समझने के लिए मध्यम-मान-गति मान्य की गई। इसी आधार पर लय को (निरन्तर एक स्वरूप गति) दृत, मध्य तथा विलम्बित लय कहा गया।

स्वर-निरपेक्ष क्रिया का प्रयोग संगीत को प्रतिष्ठापित करने वाले काल रूपी अंतर्वस्तु 'ताल' के लिये आवश्यक है। ताल के अंतर्गत ये क्रियाएँ हस्त क्रियाएँ कही जाति हैं। वैसे घन तथा अवनद्ध वाद्यों की वादन क्रियाओं से भी ताल धारण किया जाता रहा है। वाद्यों द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ हस्तक्रियाओं पर ही आधारित होती है।

अक्षरोच्यारण के आधार पर निश्चित कालमान में अंतर आना स्वाभाविक होगा। इसी कारण प्राचीन काल में पांच निमेश काल, उत्तर-प्राचीन काल में पांच लघुअक्षरोच्यारण काल, मध्यकाल में 4 से 8 लघु अक्षरोच्यारण काल तथा वर्तमान काल में एक सेकंद (एक वर्णोच्यार) काल को कालमान के रूप में उद्धृत किया गया है। इन काल-मानों के आधार पर (दो क्रियाओं के मध्य में लगने वाले काल) स्थापित गति (लय) को मध्यलय मान्य कर, इससे कम काल-मान के दो क्रियाओं मध्य की विश्रांति से प्राप्त लय को दृत तथा अधिक काल मान के विश्रांति से प्राप्त लय को विलंबित लय मान्य किया जाता है।

प्राचीन, मध्यकालीन तथा वर्तमान कालों में संगीत संदर्भ में इन्हीं तीन (दृत, मध्य, विलंबित) लय प्रकारों का विवेचन प्राप्त होता है। मध्यकालीन संगीत-ग्रंथ, 'संगीत-रत्नाकर' में दृत के दुगुने प्रमाम-काल की मध्य तथा मध्य से दुगुने प्रमाण-कालकी विलंबित लय होगी ऐसा कहा है। यदि हम प्राचीन एवं मध्य-कालीन ग्रंथों का अध्ययन करें तो हमें (मार्गों के अनुसार) विलंबित लयो तथा (द्विकल- चतुष्कलादि से) दृत लयों के प्रकार प्राप्त होते हैं।

वर्तमान में हम इसे अति-विलंबित तथा अति-दृत के रूप में उल्लेख करते हैं।

एक सेकंद = एक मात्रा (मध्यलय) इस आधार पर ताल-वादन में वर्ण क्रिया के आधार पर लय प्रकारों को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है

लय प्रकार	कालमान प्रतिवर्ण	लय का चलन मात्रा एवं वर्णों में	वर्ण एवं क्रिया संख्या	मात्रा संख्या
अतिदृत	¼ सेकंड	1 2 3 4 5 6 7 8 धा गे ति ट धा गे ति ट 9 ,10 ,11 ,12 13, 14, 15, 16 धा गे ति ट ग दि गे न	16	4
दृतलय –	½ सेकंद	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 धा गे ति ट ग दि गे न	8	4
मध्यलय -	1 सेकंद	1, 2, 3, 4, धा गे ति ट	4	4
विलंबित -	2 सेकंद	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 धा s गे s ति s ट s	4	8
अति विलंबित -	4 सेकंद	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 धा s s s गे s s s 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16 ति s s s ट s s s	4	16

वर्तमान में ये मुख्य लय प्रकार प्रचलित हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित दक्षिण मार्ग के अनुसार एक वर्ण वादन के लिए आठ मात्रिक काल एवं अष्टक्ल के अनुसार एक मात्रा काल में आठ वर्णों का वादन भी हो सकता है। इस प्रकार के लय प्रकारों को हम क्रमशः अति-अति विलंबित एवं अति-अति-दृत कह सकते हैं, किन्तु

प्रचलन में इन्हें भी अति-विलंबित तथा अति-द्रुत कहने का ही प्रचलन है। एक स्थापित लय में वर्णों के वादन से दुगुन, तिगुन, चौगुन, छैगुन अठगुन इन लय प्रकारों को सरल लयकारियाँ तथा आड़, कुआड, बिआड आदि लय प्रकारों को कठिन लयकारियाँ कहते हैं। मध्यकालीन ग्रंथों में अनेक लय प्रकार होने का उल्लेख मिलता है। 'बृहदेशी ग्रंथ में नौ प्रकार की लयों का स्पष्ट उल्लेख हैं।

(9) यति –

यति शब्द की उत्पत्ति या = जाना (गति चलन) और यम = नियमन इन दो अर्थों युक्त यम-या से हुई है जिसका अर्थ है, गति चालन (लय) के नियम।

अखण्ड कालगति को नियमित क्रियाओं द्वारा खण्डित करने पर लय प्राप्त होती है। स्थापित लय के आधार पर इसमें दृत या विलंवित लय का प्रयोग अथवा दोनों लयो का या तीनों लयों का प्रयोग वर्णाक्षरों के वादन से ताल व्यवहार में किया जाना संभव है। इन तीनों प्रकार के लयों के व्यवहार में तुलनात्मक आधार पर (प्राप्त) वादन के प्रकारों के लिये निर्मित नियम ही 'यति है।

एक बार स्थापित लय के अनुपात में शीघ्र अथवा ठाह गति के अनुसार वादन में अंतर लाया जा सकता है। यह परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। वास्तव में 'यति' यह (पुलिंगी) शब्द छंद शास्त्र का पारिभाषित शब्द है। साधारण छंदों में अखण्ड स्वरनाद नहीं रहता अपितु उच्यारभेदो के अनुसार इसमें खण्ड पड़ते है। छंदो में गीत के खण्डो के नियमन को यति कहते है। तभी कहा गया है "छंद-यति आल्हादयति इति छंदः'। अर्थात् छंदो के नियमित खण्ड (यति) होने के कारण ही वह लय की विविधता से आनंदकारी होता है।
गति के इस प्रकार के खण्डन से निर्मित होने वाले लय प्रकारों का नियमन संगीत में 'यति' (स्त्रीलिंग) कहलाने लगा। लय केनियमानुसार परिवर्तन स्थान को 'यतिस्थान' कहते हैं।

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन ग्रंथों में अधिकतर समा, स्त्रोतोगता, तथा गोपुच्छा इन तीन प्रकार की 'यति' का उल्लेख मिलता है। उत्तरी मध्यकाल के कुछ ग्रंथो में तीन तथा कुछ संगीत ग्रंथों में पांच (समा, स्त्रोतोगता, गोपुच्छा, पिपिलका और मृदंगा) यति प्रकारों का विवेचन प्राप्त होता है। प्राचीन ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' से लेकर संगीत रत्नाकर, 'संगीत-सूर्योदय, संगीत-सारामृत, अभिनय-ताल-मंजरी आदि लगभग सभी ग्रंथों में लय-प्रवृत्ति नियमों को यति स्वरूप में परिभाषित किया गया है। मध्यकाल के कुछ ग्रंथों से स्त्रोतागता के स्थान पर इस यति-प्रकार को स्त्रोतावहा भी कहा गया है।

समायति - दृत, मध्य तथा विलंबित इन लयों में से किसी भी एक लय का प्रयोग एक सरीखा निरंतर होता रहे तो वह 'समायति' होगी। अर्थात् ताल व्यवहार के आदि, मध्य और अंत के वादन में एक समान या एक ही लय का प्रयोग हो। पूर्ण दृत, पूर्ण मध्य या पूर्ण विलंबित ऐसे इसके तीन वादन प्रकार होंगे।

खोतागता एवं स्रोतावहा - स्रोत या नदी के प्रवाह की प्रकृति के लयचालन को स्रोतागता या स्रोतावहा गति कहा जाता है। इसको नदी के उद्गम स्थान के अर्थ में (झरना स्वरूप) देखा जा सकता है। नदी के उद्गम् का स्रोत पानी के भण्डार से जब जल ढाल की ओर बढ़ता है तो उसका प्रवाह संथ (धीमा) होता है। आगे और अधिक ढालू स्थान पर इसका प्रवाह मध्यम तेज होता है और जब वह नीचे की ओर आता है तो उसका प्रवाह तेज होना है। इसी गतिमान के आधार पर वादन में प्रथम विलंबित लय में, उसके पश्चात् मध्य लय में अंत में दृत लय में वादन प्रकार प्रस्तुत किया जाता तो इस नियमन को स्रोतागता या स्रोतावहा यति कहते हैं। इस प्रकार के 'यति' के भी तीन प्रकार बताये गये हैं। यथा - विलंबित - मध्य - दृत, विलंबित - मध्य - मध्य, मध्य-दृत - दृत।

गोपुच्छा - यानि गाय के पूंछ के आकार के अनुसार। गाय की पूंछ और गाय के पूंछ का अन्तिम भाग (बालो का गुच्छा) इन दो अर्थों में इस प्रकार के 'यति' नियमन को देखा जा सकता है। साधारणतः सभी ग्रंथों में गाय के अति ऊपरी तथा अति नीचे के भाग को छोड़कर ही गोपुच्छा-यति का विवेचना किया गया है। इस आधार पर गायकी पूंछ शुरू से पतली, औरअंत में मोटी होती है। इस प्रकार के गोपुच्छ के अनुसार वादन में दृत-मध्य और विलंबित इस प्रकार से वादन प्रकार के नियमन को को. 'गोपुच्छा' यति कहा जाता है। इसके भी तीन प्रकार बताये है। यथा : दृत-मध्य-विलंबित, दृत-मध्य मध्य, मध्य-विलंबित बिलंबित।

पिपिलिका - पिपिलिका का अर्थ होता है 'चींटी'। चींटी के चलन गति के अनुसार ताल-व्यवहार के लय-नियमन को पिपिलिका यति कहा गया है। जिस प्रकार चींटी प्रथम रुककर धीमी गति के पश्चात् एकदम शीघ्र गति से चलकर पुन्हः रुककर धीमी हो जाती है, उसी प्रकार ताल वादन व्यवहार धीमी-शीघ्र धीमी गति (लय) में करने पर वह पिपिलिका यति होगी। 'रस कौमुदि' ग्रंथ में कहा गया है - 'मध्ये सूक्ष्म लया प्रांते स्थूला ज्ञेया पिपिलिका'। इस आधार पर इसके भी तीन प्रकार बताये गये हैं- बिलंबित-मध्य-विलंबित, विलंबित दृत-विलंबित, और मध्य-दृत-मध्य।

मृदंगा - मृदंगा यति के लिये 'रसकौमुदि' ग्रंथ में कहा गया है - 'पिपिलिका विपर्यासा मृदंगा यतिरुच्यते'। अर्थात् पिपिलिका के विपरित उल्टे प्रकार से लय-चलन के नियमन से मृदंगा यति होगी। मृदंग का अंग आदि - अंत में

सूक्ष्म (कम व्यास का) तथा मध्य से स्थूल (अधिक व्यास का) होता है। इसी आधार पर आदि अंत में शीघ्र और मध्य में स्थूल गति में लय व्यवहार नियमन को मृदंगा यति कहेंगे । इसके तीन प्रकार बताये गये हैं- मध्य-विलंबित-मध्य, दृत-मध्य-दृत, दृत-विलंबित-दृत । 'संगीत दर्पण' ग्रंथ में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।

(10) प्रस्तार –

'प्रस्तार' का अर्थ विस्तार करना ऐसा होता है । ताल-वादन में ताल के पाटाक्षरों एवं लाल की मात्राओं एवं ताल विभागों के आधार पर उसका वादन-विस्तार ही प्रस्तार है । बिना विस्तार (प्रस्तार) के ताल वादन रंजक नहीं सकता इस कारण 'प्रस्तार' आवश्यक है, इसीलिये इसे ताल का दशम-प्राण माना गया है । प्रस्तार-विचार वास्तव में प्रस्तार-व्यवहार हो जाता है । प्रस्तार विचार यह एक प्रक्रिया है । किसी एक घटक की संख्या ज्ञात होने पर - उसके कितने समूह निर्माण होंगे, वे समूह कैसे होंगे, उनका क्रम क्या होगा, क्रम का निर्धारण कैसा होगा, उसके विशिष्ट समूह कैसे होंगे, निश्चित क्रम संख्या कैसी होगी, उन समूहों का फैलाव कैसे किया जा सकेगा (लय या क्रिया स्वरूप से) इनका विचार ही प्रस्तार विचार है । ताल के इस दशम् प्राण का ताल वादन के व्यवहार से सीधा संबंध होने के कारण, इसके अन्य (पूर्व लिखित) नो प्राणों का पूर्ण ज्ञान आवश्यक हो जाता है ।

प्रस्तार-विचार में शास्त्रोक्त नियम के क्रम का महत्व होता है किन्तु प्रस्तार-व्यवहार में इस क्रम का पालन होगा ही ऐसा संभव नहीं है । प्रस्तार व्यवहार में जो क्रम उत्स्फूर्त हो जाये, उनका व्यवहार (वादन) किया जाता है । ईसा पूर्व एवं ईसा पश्चात् के - चरक संहिता, सुश्रुत, पिंगलशास्त्र, आदि ग्रंथों में छंद शास्त्र के रूप में प्रस्तार-विचार का उल्लेख मिलता है । संगीत संदर्भ में सर्व प्रथम उपलब्ध ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' है ।

इस ग्रंथ में यद्यपि ताल-विस्तार (प्रस्तार-विचार) का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है तथापि कुछ-कुछ स्थानों पर विस्तार धातु, वर्ण-प्रकर्ष का उल्लेख है । 'हलायुध' ने (ई. सन् 700-800) प्रस्तार को सूत्रबद्ध किया इस का स्पष्ट प्रमाण है । 'वृत्त रत्नाकर' मे केदार भट ने (इ.स. 900) प्रस्तार विचार में वृद्धि की । जयकीर्ति (इ.स. 1100) ने मात्रानुसार प्रस्तार-विचार प्रचार में लाया । भास्कराचार्य (इ.स. 1150) ने प्रस्तार-विचार के गणितीय आधार में सुधार लाया । 13 वी सदी के ग्रंथ में 'संगीत रत्नाकर' में शारंगदेव ने प्रस्तार विचार का विषद विवेचन कर, प्रस्तार-समूह, प्रस्तार-स्वरूप, प्रस्तार क्रम, प्रस्तार क्रम का निर्धारण, कौन से प्रस्तार क्रम की कौन सी संख्या होगी, आदि का विस्तृत विवेचन नष्ट उद्दिष्टादि 19 प्रयत्नों के माध्यम से किया है ।

संगीत में प्रस्तार विचार दो प्रकार से होता है - एक स्वरांग तथा दूसरा तालांग । स्वरांग विस्तार राग प्रस्तुतिकरण में स्वरो द्वारा तथा तालांग विस्तार ताल के अंगों की मात्रा संख्या के धार पर ताल व्यवहार स्वरूप में किया जाता । विस्तार का एक निश्चित स्वरूप स्पष्ट करने के लिये ताल की कुल मात्रा-संख्या, तालांग (चिन्ह),

तालांगो की मात्रा संख्या आदि के आधार पर ताल व्यवहार के विस्तार के लिये जो नियमन किया गया वहीं ताल का 'प्रस्तार' विचार है।

प्रस्तार विचार का हम तालावयव (विभाग या अंग) की मात्रा संख्या के अनुसार विवेचन करे तो यह स्पष्ट होगा कि जितनी तालांग की मात्रा-संख्या कम होगी उतना उसका विस्तार कम (छोटा) तथा जितनी अधिक होगी उतना विस्तार अधिक (बड़ा) होगा। हम देखते हैं कि प्राचीन मार्गी-तालो, मध्यकाल के देशी तालो तथा वर्तमान के तालों में पांच मात्रा से अधिक का तालावयव (अंग या विभाग) नहीं रखा गया है।

'नाट्यशास्त्र' में 'प्रस्तारे चैव कलानाम् . .' कहकर, कला या क्रिया के आधार पर 'मार्ग रूप में ताल के काल का एवं द्विकलादि' रूप में ताल की क्रियाओं के विस्तार को प्रस्तार कहा है। प्राचीन, मध्य-कालीन तथा आधुनिक ग्रंथों में ताल के क्रिया विस्तार कोही प्रस्तार कहा गया है। 'संगीत-शास्त्र' ग्रंथ में वासुदेव शास्त्री ने प्रस्तार की परिभाषा इस प्रकार की है - 'भिन्न-भिन्न रूप से किये जाने वाली अंग कल्पना को (नियमानुसार) अपनाया जाने वाला विचार (मार्ग) ही विस्तार (प्रस्तार) हैं।

ताल के अवयव (देशी तालों के संदर्भ में) लघु, गुरू, और प्लुत का विस्तार-क्रम 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में शारंगदेव ने बताया है।

यथा

लघु प्रस्तार	**गुरु प्रस्तार**
1 (1)	s (1)
00 (2)	11(2)
	001(3)
	010 (4)
	1 00 (5)
	0000 (6)

प्लुत प्रस्तार (1 से 19)

s' (1)	0s0 (10)
| s (2)	0110 (11)
00s (3)	1010 (12)
s | (4)	00010 (13)
111 (5)	s00 (14)
0011 (6)	1100 (15)
0101 (7)	00100 (16)
1 001 (8)	01000 (17)
00001(9)	10000 (18)
	000000 (19)

प्राचीन, मध्यकालीन तथा वर्तमान तालस्वरूपो में काफी भिन्नता दिखाई देती है। तालांग के प्राचीन स्वरूप पूरी तरह लुप्त हो गये हैं। वर्तमान में तालांग (विभाग) मात्रा संख्या के आधार पर बनाये गये हैं। ताल एवं ताल के अंगों की रचना गीत के काल (मात्रा) एवं बल के आधार पर की गई है। गजल, कब्बाली, धृवपद, धमार ख्याल, तराना, ठुमरी, टप्पा, भजन, लोकगीत आदि के अनुसार तालो की रचना की जाकर ताल प्रचार में आये। प्राचीन सशब्द तथा निशब्द क्रियाओं को ताली एवं खाली स्वरूप में दर्शाया जाने लगा।

प्राचीन जातियों के अनुसार इन तालों का जाति स्वरूप भी स्पष्ट नहीं है। प्राचीन व मध्यकाल में प्रत्येक ताल के निश्चित पाटाक्षरों (ठेको) की रचना नहीं थी, वर्तमान में तालो के ठेको को निश्चित पाटाक्षरों में स्पष्ट किया जाता है। प्राचीन-मध्यकालीन ताल स्वरूपो से वर्तमान ताल स्वरूप में भिन्नता आने एवं उनके वादन स्वरूप में अंतर आने से ताल-प्रस्तार स्वरूप में भी अंतर आया। वर्तमान तालो के तीन भेद किये गये-सम, अर्धसम तथा विषम। इस प्रकार के ताल भेद के कारण तथा तालो में 1, 2, 3, 4, 5 मात्रिक तालावयवोका प्रयोग होने से तालो की विभिन्न रचनाओं (पेशकार, कायदा, रेला आदि) का तालांग एवं कालांग स्वरूप में वादन कर तालांग एवं कालांग की मात्रा संख्या के आधार पर विस्तार किया जाता है। अधिकतर सम और अर्धसम तालो की कुल मात्रा संख्या की आधी मात्राओं का तालांग और आधी मात्राओं का कालांग बनाकर उसी आधार पर वादन-विस्तार किया जाता है। विषम तालो में उसकी पूर्ण मात्राओं का तालांग एवं पूर्ण मात्राओं का कालांग बनाकर वादन विस्तार करने का प्रचलन है।

समताल - जैसे - तीन ताल की 16 मात्राओ का प्रस्तार करते समय 8-8 मात्राओं का तालांग एवं कालांग बनाकर 8 को विभाजित करके तालांग कालांग स्वरूप में इसका विस्तार (प्रस्तार) किया जाता है।

अर्धसम - जैसे - झपताल की 10 मात्रा का प्रस्तार करते समय 5-5 मात्राओं के तालांग-कालांग के आधार पर तथा विषम ताल जैसे 9, 11 मात्रिक तालों के पूर्ण मात्राओं का तालांग तथा कालांग बनाकर इनका विस्तार करने का प्रचलन है।

स्वयं जांच अभ्यास 1

2.1 प्राचीन काल से लयधारणा ताल वाद्यों से की जाती रही है ?

क) सही

ख) गलत

2.2 ताल के कितने प्राण हैं?

क) 20

ख) 3

ग) 9

घ) 10

2.3 बृहददेशी ग्रन्थ किसने लिखा ?

क) द्तिल

ख) मतंग

ग) क्ल्लिनाथ

घ) भरत

2 .4 समय की समान गति को लय कहा जाता है?

क) सही

ख) गलत

2 .5 संगीत में प्रस्तार विचार दो प्रकार से होता हैं ?

क) सही

ख) गलत

2.4 सारांश

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य को सीखने से पहले ताल को जानने का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है। इस लिए ताल के दस प्राण को जानना अत्ति आवश्यक हो जाता है , ताल के दस प्राण के अंतर्गत काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाती, कला, लय, यति, प्रस्तार आते हैं। ताल, संगीत में लयबद्ध धडकन या प्रहार होता है, यह मनमाना नहीं होता, बल्कि इन दस प्राणों से नियंत्रित होता है।

2.5 शब्दावली

- अनागत : सम से पहले ताल की आखरी मात्रा पे बल देकर वादन करना ।
- दत्तिलम : यह एक प्राचीन ग्रन्थ है जो दत्तिल मुनि ने लिखा था ।
- अलंकार : साधारण शब्दों में जब स्वरों का आरोह या अवरोह (चलन) नियम के अनुसार किया जाता है तोउसे अलंकार कहा जाता है।
- लय : गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।

- विलंबित लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

2.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

2.1 उत्तर: क)

2.2 उत्तर: घ)

2.3 उत्तर: ख)

2.4 उत्तर: क)

2.5 उत्तर: क)

2.7 संदर्भ

डॉ.केशव शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, अक्टूबर 2024।

श्री विक्रांत शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, अगस्त 2024।

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

2.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश ।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

प्रो० बी. एल. यादव   (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद ।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

2.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. ताल क्या है लिखिए ।

प्रश्न 2. ताल के दस प्राण विस्तार पूर्वक लिखिए ।

इकाई - 3
(नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्य)
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
3.1	भूमिका
3.2	उद्देश्य तथा परिणाम
3.3	नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्य
3.3.1	प्राचीन अवनध वाद्यों का परिचय
	स्वयं जांच अभ्यास1
3.4	सारांश
3.5	शब्दावली
3.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7	संदर्भ
3.8	अनुशंसित पठन
3.9	पाठगत प्रश्न

3.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह तीसरी इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्यों को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, वैचित्रतापूर्ण तथा आनंददायक होता है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत के कलाकार तालों को अपने मंच प्रदर्शन के समय प्रस्तुत करते हैं। मंच प्रदर्शन से पहले नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्यों का परिचय को जानना ज़रूरी है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्यों जैसे पुष्कर, मृदंग, मर्दल, पणव, आवज, दुर्दर, दुंदुभी, झल्लरी, पटह, भेरी, निःसाण, तुम्बकी, करटा, घट, ढवस, दक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रुंजा, डमरू, डक्का, मनडिडका, डक्कुली, सेल्लुका, भाण, त्रिवली, त्रिकुला,के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्यों की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्यों की जानकारी की क्षमता विकसित करना।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी वादन के तकनीकी पहलुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्यों को लिखने में निपुणता प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्यों को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

3.3 नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्य

भारतीय संगीत एवं अवनद्ध वाद्यों का इतिहास प्रागैतिहासकि काल से प्रारंभ होता है। मानव को सर्वप्रथम (स्वर ज्ञानकी अपेक्षा) लय का ही ज्ञान हुआ था। प्रागैतिहासिक एवं वैदिक काल से ही चर्माच्छादित ताल वाद्यों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है किन्तु उन वाधों की बनावट तथा उनके वादन संबंधी विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं है। शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त सबसे प्रथम अवनद्ध वाद्य के रूप में मृदंग का ही उल्लेख मिलता है। भरत मुनि कृत "नाट्यशास्त्र" यह ग्रंथ भारतीय शास्त्रीय संगीत में ऐतिहासिक दृष्टि में सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में तथा समय के सम्बन्ध में संगीताचार्यों में मतभेद हैं तथापि प्राप्त जानकारी के आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल दूसरी तीसरी सदी माना जाता है। इस ग्रंथ के 33 वे अध्याय (अवनद्धातोद्य विधानाध्याय) मे अवनद्ध वाद्यों के उत्पत्ति, बनावट, वादन एवं अन्य आवश्यक परिभाषाओं का विस्तृत विवेचन किया है। भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में जिन वाद्यों का उल्लेख एवं वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं-

पुष्कर, मर्दल, मृदंग, पणव, दर्दुर, भूमि दुंदुभी, दुंदुभी, झल्लरी, पटह।

भरत के बाद दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ शारंगदेव कृत "संगीत रत्नाकर" है। इस ग्रन्थ का रचना काल 13 वी सदी माना जाता है। भरत तथा शारंगदेव के बीच के काल में कई आचार्यों ने ग्रंथों की रचना की किन्तु उन ग्रंथों में तथा भरत के 'नाट्यशास्त्र' में उल्लेखित विचारों में विशेष अंतर नहीं था। शारंगदेव ने समयानुसार अपने ग्रंथ में मार्गी एवं देशी संगीत तथा तालों का विस्तृत विवेचन किया है तथा निर्भीकता से स्वतंत्र विचार प्रकट किये हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ के पांच वे अध्याय में ताल का तथा छठवें अध्याय में वाद्यों का विस्तृत विवेचन किया है। मार्गी संगीत एवं देशी संगीत के लिए उपयुक्त एवं उस काल में प्रयोग होने वाले जिन अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं- पटह, मर्दल, (मृदंग, मुरज) हुडुक्का, करटा, घट, ढवस, डक्का, कुडुवा, घडस, रुंजा, डमरुक, मंडिडक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुंदुभी, भेरी, निस्साण, तुम्बकी।

नाट्यशास्त्र में एवं संगीत रतनाकर - में वर्णित कुछ वाद्य समान है किन्तु संगीत-रत्नाकर में कुछ अलग वाद्य है जिनका नाट्यशास्त्र में उल्लेख नहीं है। इससे यह प्रमाणित होता है कि शारंगदेव काल में संगीत अधिक विकसित हो चुका था।

3.3.1 प्राचीन अवनध वाद्यों का परिचय

(1) पुष्कर :-

नाट्यशास्त्र में भरत ने पुष्कर का विस्तृत विवेचन किया है। इस वाद्य के उत्पत्ति के संबंध में भरतमुनी लिखते हैं-

"किसी अनध्याय के दिन जब आकाश में बादल छाये हुए थे तभी स्वाति मुनि जल लाने के लिए एक सरोबर पर गये। जब सरोवर में जल लेने उतरे तो (इन्द्र ने पृथ्वी को एक बड़ा सागर बना डालने के लिए) जोरों से मूसलाधार वृष्टि आरंभ हुई। तब उस सरोवर में वायु वेग से गिरने वाली मेघवृष्टि के जलबुंदों के द्वारा (सरोवर के) कमल पत्रों पर जोरदार एवं मधुर ध्वनि को सुनते हुए (जो वर्षा की बूदों से उदद्भुत थी. एक आश्चर्य मानकर) उस पर ध्यानपूर्वक विचार आरम्भ किया। पत्तों पर होने वाली उस सुन्दर और हृदयग्राही ध्वनि के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारों में विभाजन का गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए अपने आश्रम को लौट आये। आश्रम में लौटकर विश्वकर्मा की सहायता से मुनि ने मृदंगों का, और फिर पुष्कर, पणव और दर्दर, वाद्यों का निर्माण कर डाला। फिर

देवगणों के दुंदुभी वाद्य को देखते हुए मुरज आलिंग्य, आंकिक, उर्ध्वक जैसे वाद्यों का निर्माण किया (33/5 से 11) पुष्कर शब्द का मुनि ने अलग-अलग अर्थों में उल्लेख किया है। पुष्कर का मृदग के रूप में, पुष्कर का वामपुष्कर एवं दक्षिण पुष्कर कहकर बाये एवं दाग्रे मुख के रूप में एवं मर्दल-मुरजका भी पुष्कर रूप में उल्लेख किया है। इस कारण वास्तव में पुष्कर वाद्य क्या था यह स्पष्ट नहीं हो पाता है। तथापि "त्रिपुष्कर" के रूप में भरत ने जिन तीन अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया है उससे उन तीन मृदंग प्रकारों, जो भरत ने बताये हैं - हरीतकी, यवाकृति, गोपुच्छाकृति का वर्णन प्राप्त होता है। ये तीन वाद्य आंकिक (हरीत की), उर्ध्वक (यवाकृति) तथा आलिंग्य (गोपुच्छाकृति) थे। इन तीन अथवा इनमें से दो वाद्यों का वादन मार्जना के अनुसार एक साथ किया जाता था। इन (त्रि) पुष्कर वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है - -

(अ) आंकिक -

यह वाद्य वर्तमान के मृदंग या पखावज के अनुसार होकर उसे भी लिटाकर बजाया जाता था। यह अधिकतर लकड़ी का बनाया जाता था। भरतकाल में मृदंग माटी के भी बने होते थे। इसकी लम्बाई 3 से ½ बिलात होकर यह मध्य में अधिक चौड़ा रहता था। बीच में से खोखला होकर इसके दो मुख होते थे। दोनों मुखो का व्यास 12 अंगुल होता था।

दोनों मुखों पर चमड़े (पुड़ी) मड़े रहते थे। यह चमड़ा गाय या बैल का दौषरहित, सफेद, चमकदार होता था। पुड़ी के चमड़ी में छेद करके डोरी या बद्धी को इनमें से डालकर दोनों पुड़ियों को कसा जाता था। बद्धी को दो के बाद तीसरी को बीच में से निकाला जाता था। डोरिया संख्या में 10 होती थी। नये आंकिक वाद्य के पुड़ी (चमड़े) पर गाय के घी के साथ तिल को पीसकर उस मसाले का लेपन किया जाता था। आंकिक के दोनों मुखों पर आवश्यकतानुसार अलग-अलग स्वर स्थापना की जाती थी। इसके साथ ही उर्ध्वक के ऊपर आंकिक के स्वर स्थापना के आधार पर स्वर स्थापना की जाती थी जिन्हें मार्जना कहते थे।

(ब) उर्ध्वक -

यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होता था। इसको खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊंचाई 4 विलात तथा मुख का व्यास 14 अंगुल होता था। वर्तमान बाये के अनुसार इसके मुख पर लगे चमड़े (पुड़ी) को डोरी से कस दिया जाता था। पुष्कर वाद्य के स्वर स्थापना में इसकी यह विशेषता थी कि इसे पंचम स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, लेपन आदि आंकिक अनुसार ही होती थी।

(स) आलिंग्य -

यह वाद्य भी लकड़ी का बना होकर बीच में से खोखला होता था। इसके एक ही मुख होकर इसे खड़ा रखकर बजाया जाता था। इसकी ऊंचाई 3 बिलात तथा मुख का व्यास आठ अंगुल का होता था। इसके ऊपर चमड़े की पुड़ी लगाई जाती थी जिसे (बाये के अनुसार) डोरी या वादी से कस दिया था। इस वाद्य को खर्ज स्वर में मिलाया जाता था। अन्य बनावट चमड़ा, डोरी, लकड़ी लेपन आदि आंकिक के समान ही होती थी।
शारंगदेव ने भरत कालीन पुष्कर वाद्य को अव्यवहारिक बताकर इसका वर्णन नहीं किया है। (रत्नाकर 6/1027)

(2) मृदंग -

भरत ने अपने ग्रंथ (नाट्यशास्त्र) में मृदंग का अलग वर्णन न करके त्रि-पुष्कर के रूप में वर्णन किया है। भरत कालीन आंकिक वाद्य (मृदंग), शारंग देव कालीन मृदंग तथा वर्तमान मृदंगम् या पखावज के समान ही था। अतः भरत कालीन आंकिक के वर्णन को हम मृदंग का वर्णन ही कहेंगे।
शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' के वाद्याध्याय (6ठा अध्याय) के श्लोक 1026 में मर्दल को ही मृदंग तथा मुरज कहा है।

(3) मर्दल -

'रत्नाकर में' मर्दल का विवेचन (6/1019 से 1029) विस्तृत रूप में किया गया है। इसकी लकड़ी बीज के वृक्ष की होती थी। यह ठीक से पकी तथा निर्दोष होती थी। लम्बाई 21 अंगुल होकर मर्दल का अंग (खोड़) बीच में से खोखला होता था। दो मुख होकर मुख पर लकड़ी की मुटाई ½ अंगुल की होती थी। दाहिने मुख का व्यास 13 अंगुल तथा बांये मुख का व्यास 14 अंगुल होता था। खोड़ के बीच के भाग का व्यास मुखो की अपेक्षा थोड़ा बड़ा रहता था। दोनों मुखो पर उनकी व्यास की अपेक्षा 1 अंगुल बड़ी चमड़ी जो पकी तथा निर्दोष होती थी मुखो को ढकने के काम लाई जाती थी। इन चमड़ियों के किनारों पर 1-1 अंगुल की दूरी पर 40 छेद किये जाकर, दोनों चमड़ियों को इन छेदों में से डाले गये वादियों से आपस में कसकर अंग के दोनों मुखो पर बांध दिया जाता था। (वर्तमान पखावज के समान)। राख को भात में मिलाकर चिकनी लुग्दी तैयार की जाती है। इस लुग्दी का 2/3 भाग लेकर उसका पूडी के आकार में बांये मुख (चमड़ी) पर बीचो बीच (वर्तमान स्याही के समान) विलेपन किया जाता था तथा शेष 1/3 लुग्दी का विलेपन इसी प्रकार दांये मुख पर किया जाता था।

(4) पणव -

पणव भी भारत का अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है। कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिससे कि पणव को वैदिक कालीन वाद्य समझा जा सकता है। पणव का वर्णन शारंगदेव के ग्रंथ रत्नाकर में नहीं है। महर्षि भरत ने मृदंग के बाद अवनद्ध वाद्यों में पणव को ही महत्वपूर्ण वाद्य बताया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पणव का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में हुआ है। वाल्मिकी रामायण के सुंदरकाण्ड (11-43) और युद्ध-काण्ड (44-92), उसी प्रकार महाभारत के अरण्यपर्व (132/19) तथा आद्योतपर्व (7/16) में पणव वाद्य का कई स्थानों पर उल्लेख है। महर्षि भरत ने तो इस वाद्य की रचना स्वाति मुनि द्वारा बताई है। इस प्रकार प्रणव की प्राचीनता मृदंग के समान सिद्ध होती है।

महर्षि भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के अध्याय 33 श्लोक 247-249 में पणव की बनावट का विवेचन किया है। इसके अनुसार पणव की लम्बाई 16 अंगुल थी। यह लकड़ी से बना होकर बीच में से खोखला रहता था। इसके दो मुख होकर उनका व्यास 5 अंगुल रहता था। खोड़ के बीच का व्यास 8 अंगुल था। खोड़ को पोला करने के बाद मुखो पर काठ की मुटाई 1/2 अंगुल होती थी। खोड़ बीच में 4 अंगुल व्यास में पोला रहता था। पणव के दोनों मुखो को बारीक, शुद्ध, साफ चमड़ी द्वारा ढक दिया जाता था। इन चमड़ियों में छेद करके, दोनों मुखों की चमड़ियों को, सूत की डोरी द्वारा आपस में कसकर बाँध दिया जाता था। बन्धन इस प्रकार किया जाता था कि इन्हें ऊंचे या नीचे स्वर के अनुसार बजाने के लिये ढील या तनाव सही ढंग से मिल सके। महर्षि भरत के अनुसार पणव पर निम्नलिखित वर्ण निकाले जाते थे –

क, ख, ग, ट, ण, दे, वा, ह, र, ल, कु, लि, लं, ध, णे, कि, रि, किण्ण।

पणव में प्रयुक्त होने वाले अन्य बोलो या बोल समूहों के बादन के सम्बन्ध में भरत ने कहा है कि बंधी हुई सुतलियों को बांये हाथ से कसकर या ढीला करके दाहिने हाथ की तर्जनी, अनामिका, कनिष्ठा, अंगुलियों द्वारा विभिन्न बोलों का तथा बोल समूहों का वादन किया जाता था। सुतली को बांये हाथ के दबाब एवं कसाव के बाद दाहिने हाथ से क, ख, त, न तथा ढील देने पर ल, घ वर्ण निकलते थे। भरत ने उत्तम पणव वादन के गुण भी बताये हैं।

(5) हुडुबा या आवज -

महर्षि भरत द्वारा उल्लेखित पणव वाद्य को देखने पर लगता है कि पणव ही भरत काल के बाद आकार परिवर्तन से आवज या हुडुक्का कहलाया है।

जायसी कृत पद्मावत् के "संजीवनी-भाष्य" में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल आवज की उत्पत्ति आतोद्य से बताते हैं। 'नाट्यशास्त्र' में आतोद्य का उल्लेख हुआ है। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने स्पष्ट लिखा है कि 'हुडुक्का को ही जानकार आवज या स्कंधावज कहते थे। आवज बजाने वाले को आउज तथा हुडुक्का बजाने वाले को हुडुकिये कहते। कुछ विद्वान हुडुक्का और आवज को अलग वाद्य मानते है। 'आइने अकबरी' में आवज को हुडुक्का का पर्याय माना है। प्राचीन अलग-अलग समय के ग्रन्थों में इसका आवज तथा हुडुक्का का पर्याय माना है। प्राचीन समय के ग्रन्थों में इसका आवाज तथा हुडुक्का नाम से उल्लेख मिलता है। इससे यह प्रतीत होता है कि हर काल में इस वाद्य का अलग अलग नामों से प्रचार रहा होगा। आइने अकबरी में लिखा गया है कि आवज या हुडुक्का ऐसा दिखता है जैसे दो नक्कारे पेंदे की ओर से आपस में जोड़ दिये हो।
"संगीत रत्नाकर" में इस वाद्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

हुडुक्का वाद्य की लम्बाई 1 हाथ (लगभग 1 से ¾ फुट), तथा अंग का व्यास 28 अंगुल का था। यह मर्दल समान लकड़ी के खोड़ से बनता था। यह बीच में से कम व्यास का होता था ! खोड़ बीच से खोखला होता था तथा इसके दो मुख होते थे तथा मुखो पर लकड़ी की मुटाई 1 अंगुल होती थी। दोनों मुखो का व्यास 7 अंगुल होता था तथा मुखो पर मढे जाने वाले चमड़े का व्यास 11 अंगुल होता था। दोनों मुखो पर उठे हुए चमड़ी भाग (गजरा) की ऊंचाई मुख से लगभग 1 से ½ अंगुल उठी रहती थी। यह उठा हुआ भाग (गजरा) बेली (बारीक चमड़ी की पट्टियों) से तैयार किया जाता था। इस प्रकार तैयार कड़े (जो पुडी के चमड़ी से बंधे हो) या गजरे में 6 छेद होते थे। इन में से डोरी या वादी डालकर दोनों मुखो को कसा जाता था। वाद्य को ठीक तरह सतह पर रखने के लिए अग्रभाग में 3 तथा पिछले भाग में 2 ऐसी 5 लकड़ी की पट्टिका (अर्गलाऐ) होती थी। बांधने की डोरी के मध्यभाग में उदर पट्टिका की लम्बाई 3 अंगुल थी। बत्तीस तंतुओं से या डोर से बनी डोरी दोनों मुखों के उपरी भाग में इस प्रकार बांधी जाती थी जिससे कि वह दोहरी स्कंध पट्टिका बन सके। हुडुक्का के खोड़ में 1/4 भाग छोड़कर, 1/4 अंगुल मोटाई के छेद दोनों तरफ किये जाते थे। ये छेद नाद की विशेषता के लिये होते थे। स्कंध पट्टिका को कंधे पर धारण कर, उदर पट्टिका को बाये हाथ से पकड़कर इसका वादन किया जाता था। पटह के वर्ण ही हुडुक्का 'के वर्णन बताये हैं। इसमें मकार और झेंकार वादन अधिक बताया है। कार वर्ज्य बताया हैं। अहोबल कृत "संगीतपारिजात में" इसका वर्णन थोड़ा भिन्न हैं। वर्तमान में यह लोक संगीत का वाद्य बनकर रह गया है।

(6) दुर्दर या दर्दर -

महर्षि भरत ने दर्दुर को अवनद्ध वाद्यो में अंग-वाद्य मानकर इसे पर्याप्त महत्व दिया है। भरत के पूर्ववर्ती आचार्यों ने इस वाद्य की महत्ता स्वीकार नहीं की थी। यह वाद्य घट के अनुसार होता था। घट का व्यास 16 अंगुल प्रमाण का तथा मुख का व्यास है। मुख पर चमड़े की पुडी लगाई जाती थी जिसका विस्तार मुख की अपेक्षा

बड़ा 12 अंगुल प्रमाण बताया हैं। घट के परत की मुटाई तथा मुख की किनार मोटी बताई होता था। पुड़ी के चमड़े में किनार पर छेद किये जाते थे। चमड़े को सुतली द्वारा, बने छेदों से पिरो कर घट कस दिया जाता था। इसमें विलेपन (स्याही) होने का प्रमाण नहीं मिलता है। चमड़ा अन्य वाद्यों के समान ही दोष रहित, नया, चिकना, कमाया हुआ, सफेद,स्वच्छ, चमकदार बताया है। दर्दुर के द, य, मं, ट, त, थ,स, क, ह, ल, न आदि पाटाक्षर उसी प्रकार दङ, मटत्थि, देंग, स्येङ्ग, में कहुला, नेंग आदि का प्रयोग भरत ने बताया है। इन वर्णों को निकालने के लिये दोनों हाथों का प्रयोग होता था। दर्दर वाद्य पर मुक्त वादन की दशा में रेक्लति, गोणों, हथिण्ण, त्रिकल, कलेचद्रो, तथा घणण्ण बोल बताये हैं (33/72)। दाहिने हाथ के प्रहारों से एणण, क्षार, ग्रघणि तथा बायें हाथ के नख के अग्रभाग के प्रहार से गोमदत्था बोल बताये हैं। (31/73) इसका वादन दबाव से तथा हाथों को नियंत्रित कर होता था। अधिकतर दाहिने हाथ का उपयोग अर्द्धमुक्त, मुक्त या बन्द ध्वनियों को निकालने के लिये तथा बांये हाथ का उपयोग दायें हाथ के सहायक के रूप में या संयुक्त वादन के लिये किया जाता था। भरत काल के बाद इसका महत्व कम हो गया। बाद के संगीत आचार्यो ने घट के रूप में इसका उल्लेख किया है। 'संगीत रत्नाकर' में उल्लेखित घट चर्म रहित वाद्य। दक्षिण भारतीय संगीत का घटम् वाद्य भी चर्म रहित है।

(7) भूमि दुंदुभी तथा दुंदुभी -

वैदिक साहित्य को विश्व साहित्य के इतिहास में सबसे प्राचीन माना जाता है। प्राचीन साहित्य में भूमि दुंदुभी एवं दुंदुभी का बड़े प्रमाण में उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद, वाजनेस ही संहिता, उपनिषद्, महाभारत, ऐतरेय, रामायण, आदि में भूमि दुंदुभी का उल्लेख है। भूमि दुंदुभी के निर्माण के बारे में कहा गया है। कि जमीन में बड़ा गड्ढा खोदकर उसके ऊपर गड्ढे के आकार से बड़ा चमड़ा रख दिया जाता था। उस चमड़े को ऊपर से खूंटियां गाड़कर उनके द्वारा ताना जाता था। तनाव के बाद लकड़ी की डांडियों से पीट-पीटकर उसे बजाया जाता था। इससे अधिक जानकारी भूमि दुंदुभी के संदर्भ में प्राप्त नहीं होती है। चमड़ा बड़ा होने के कारण वह किसी बड़े जानवर का होगा। भूमिदुंदुभी का उपयोग लोगों को एकत्रित करनेः, खतरे का संकेत देने आदि के लिये किया जाता होगा।

दुंदुभी का उल्लेख भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' के 33 वें अध्याय के श्लोक 11 में मिलता है। उनके मतानुसार दुंदुभी देवगणों का वाद्य था इसका विस्तृत वर्णन नाट्यशास्त्र में नहीं है।

शारंगदेव के ग्रन्थ संगीत-रत्नाकर में दुंदभी वाद्य को अवनद्ध वाद्यो में रखा गया है (6/12, 13, 14)। इस वाद्य का विस्तृत वर्णन (6/1146-1148) शारदेव ने किया है। शारंगदेव के विवेचनानुसार दुंदुभी वाद्य एक अंगी होकर इनका आकार बड़ा होता था। (आकार निश्चित नहीं बताया है)। यह आम के लकड़ी से अधिकतर तैयार किया जाता था। यह एक मुखी वाद्य था। इसको अन्दर से खोखला कर इसके मुख के व्यास से बड़े चमड़े को उसके

किनारों पर छिद्र करके, उन छिद्रों में से वादिया डालकर कस दिया जाता था। बड़े आकार के कारण इसकी ध्वनि बड़ी होती थी। इसका वादन कोणदार चर्म अथवा डांडी से किया जाता था। इसकी ध्वनि मेघ गर्जना समान धुंकार स्वरूप की होती थी। इसका वादन मंगल कार्यों में, विजयपर्व पर तथा मन्दिरों में किया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि मध्यकाल के उत्तर भाग में उल्लेखित नक्कारा, नगाडा, घौंसा आदि वाद्य दुंदुभी के ही समान वाद्य थे।

(8) झल्लरी –

नाट्यशास्त्र में (33/16) झल्लरी का उल्लेख भरत ने किया है, अंग तथा प्रत्यंग वाद्यों का उल्लेख करते हुए भरत ने झल्लरी इस वाद्य को प्रत्यंग वाद्य बताया है। अवनद्ध वाद्यो में, अंग वे वाद्य होते थे, जिनकी विधिवत् स्वरों में स्थापना की जा सकती थी। प्रत्यंग वाद्यों में विशेष (स्वरयुक्त) गुंजन नहीं रहता था, स्वर स्थापना नहीं होती थी, विधिवत् प्रहारों की व्यवस्था नहीं थी और ना ही अक्षर उत्पन्न होते थे। प्रत्यंग वाद्यो के वादन में मार्जनाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में झल्लरी को अवनद्ध वाद्यो के अन्तर्गत माना है (6/12-18)। रत्नाकर में जो झल्लरी का वर्णन मिलता है वह वर्तमान चंग या खंजरी वाद्य के समान है। इसके वजन एवं आकार सम्बन्धी वर्णन (6/1137-1139) संगीत-रत्नाकर के वाद्यध्याय में मिलता है। इस वाद्य का भार शारंगदेव ने 26 पल (1.5 किलो) बताया है। यह लकड़ी की बनाई जाती थी जिसकी लम्बाई 13 अंगुल होती थी। इसके मुख का व्यास 18 अंगुल होता था। इसका एक ही मुख होता था। इसके अंग में (गले में) दो छिद्र होते थे जिसमें से डोरी डाली जाती थी। इसका मुख चमड़े से मढा होता था। उसको बांये हाथ से पकड़कर, दाहिने हाथ से उसका वादन किया जाता था। इतना ही वर्णन 'संगीत रत्नाकर' में बताया है। इसके स्वर स्थापना एवं वादन विधि का उल्लेख न होने से यह अवनद्ध वाद्य शास्त्रीय संगीत के अनुपयोगी रहा होगा ऐसा हम कह सकते हैं।

संगीतसार, संगीत पारिजात, संगीतो पनिषद्सारौद्धार, इन ग्रन्थों में भी झल्लरी का उल्लेख मिलता है।

(लकड़ी का नाम जहाँ न दिया हो वहाँ खैर या रक्त चंदन की समझना चाहिये) (6/1157-1158) I

(9) पटह -

पटह यह अवनद्ध वाद्य है। प्राचीन काल से इस वाद्य का उल्लेख मिलता है। वाल्मिकी रामायण, पौराणिक ग्रन्थों, महा भारत उसी प्रकार मानसौल्लास, नाट्:शास्त्र, भरत भाष्य, संगीत रत्नाकर आदि संगीत ग्रन्थों में इसका उल्लेख है।

महर्षि भरत ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में पटह वाद्य का अवनद्ध वाद्यों में प्रत्यंग वाद्य के रूप में उल्लेख किया है (33/27)। स्वर स्थापना के लिए अनुपयोगीए बड़े आकार, तथा गंभीर ध्वनियुक्त होने से इसका विस्तृत वर्णन नहीं किया।

'संगीत-पारिजात' ग्रन्थ में पटह को ढोलक सदृश उल्लेखित करते हुए (18 वी सदी) अहोबल ने लिखा है "पटह ढोलकः इति भाषायाम्", किन्तु संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में (13 वीं सदी) पटह को मृदंग तथा मर्दल के समान मान्यता दी है तथा उसका विस्तृत वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भरत काल तीसरी सदी से धीरे-धीरे पटह संगीत में अपना स्थान प्राप्त कर शारंगदेव के काल में यह संगीत के प्रमुख अवनद्ध वाद्य के रूप में मुखरकर सामने आया। 13 वीं सदी के बाद, उसी तरह धीरे-धीरे इस वाद्य का संगीत के क्षेत्र में महत्व कम होता चला गया।

शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत-रत्नाकर में पटह का विस्तृत विवेचन किया है। शारंगदेव ने इसे मार्गी एवं देशी दोनों प्रकार के संगीत में उपयोगिता की दृष्टि से मार्गी पटह एवं देशी पटह के रूप में प्रस्तुत किया है। मार्गी तथा देशी पटह दोनों की रचना, वादन आदिका अलग अलग वर्णन किया है। शारंगदेव के अनुसार पटह अवनद्ध वाद्य था (6/12/14) | मार्ग तथा देशी संबंध के कारण पटह भी दो प्रकार के बताये हैं।

मार्गीपटह -

मार्गी पटह की लम्बाई 2 से ½ हाथ होती थी यह लकड़ी का बना होकर मध्य भाग खोखला होता था। इसके खोड़ की गुलाई (परिधी) 60 अंगुल की होती थी। इसके दो मुख होते थे। मुखों की अपेक्षा अंग (खोड़) बीच में से उठा हुआ (60 अंगुल से ज्यादा परिधि का) होता था। दाया मुख 11 से ½ - अंगुल तथा बाया मुख 10 से ½ अंगुल व्यास का होता था। दाहिने मुख पर लोहे का कड़ा व बाये मुख पर बेली से बना गोल कड़ा (गजरा) बिठाते थे।

दाये मुख पर 6 माह के मरे बछड़े की खाल तथा बाये मुख पर मृत पशु की मोटी खाल को तैयार कर चमड़ा चढ़ाने में उपयोग किया जाता था। बाये मुख तथा दाये मुख के कड़ो में 7-7 छेद करके दोनों मुखों को डोरी (वादी) द्वारा कसा जाता था। इन डोरियों में 4 अंगुल प्रमाण के धातु के 7 छल्ले डाले जाते थे। इन छल्लों का उपयोग स्वर को ऊँचा नीचा करने में किया जाता था। बाएं मुख के कड़ों में एक सूत की गूंथी हुई नरम तथा मोटी डोरी कच्छा के रूपमें बांधी जाती थी जिसका उपयोग कमर में बांधने के लिए किया जाता था।

देशी पटह : (6/817-820)

देशी पटह की रचना मार्गी के अनुसार ही बताई है। तथापि इसकी लम्बाई 1 से ½ हाथ, दाया मुख 7 अंगुल, बाया मुख 6 से ½ अंगुल व्यास का होता था। दाये मुख पर मार्गी पटह के अनुसार किन्तु बाये मुख पर जानवर के जंघा के निचले चमड़े का उपयोग होता था।

दोनों पटहों में खेर की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। शारंगदेव के अनुसार देशी पटह जो प्रयोग में आते थे तथा जिन्हें अन्य गुणिवजन 3 प्रकार के उत्तम मध्यम, अधम बताते थे आकार अलग अलग होने थे। शारंगदेव द्वारा वर्णित पटह उत्तम प्रकार का, उससे 1/12 अंश से कम वाला मध्यम तथा 1/6 अंश कम आकार वाला अधम कहलाता था।

शास्त्रो में पटह के वर्ण, (पाटाक्षर) संयुक्त बोल, पाट, पाटों के देवता, हस्त पाट, पाट-हस्तक, पाटविन्यास आदि का वर्णन किया मिलता है।

क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, र और ह इनके संयोग से अनेक बोलों की रचना की जाती थी जैसे - किण, रवण, जिण आदि। इस प्रकार अन्य वर्णों के संयोग से भिन्न-भिन्न पाटों में रचना की जा सकती थी।

मुख्य पाट 5 प्रकार के बताये है जो शिवजी के मुख से उत्पन्न हुए –

(1) नागबंधन	-	जो संघोजात मुख से उत्पन्न हुआ
(2) स्वास्तिक	-	जो वामदेव के मुख से उत्पन्न हुआ
(3) अलंग्न	-	जो अधोश के मुख से उत्पन्न हुआ
(4) शुद्ध	-	जो तत्पुरुष से शुद्धि उत्पन्न हुआ
(5) समस्खलित	-	जो ईशान मुख से उत्पन्न हुआ

पाटो के देवता -(1) नागवंध - ब्रह्मा (2) स्वस्तिक - विष्णु
(3) अलग्न-शिव (4) शुद्धि-सूर्य (5) समस्खलित चंद्र।

नंदिकेशिर के मुख से निकले पाट

कोणाहत, संभ्रांत, विषम और अर्धसम

हस्तपाट - उत्फुल्ल, खलक, पाण्यन्तर नकुट्टक, दंडहस्त, युगहस्त, अर्धहस्त, स्थूलहस्त, अर्धार्थपाणि, पार्श्वपाणि, अर्धपाणि, कर्तरी, समकर्तरी, विषम कर्तरी, समपाणि, विषमपाणि, पाणिहस्त, नागबन्ध, अवघट, स्वस्तिक, समग्र।

अष्ट पाट हस्तक - तल प्रहार, प्रहर, वलित, गुरुगुंजित, अर्धसंच - प्रपंच, त्रिसंच, विषम हस्तक, अभ्यस्तक।

पाटविन्यास के भेद - बोल्लावणी, चल्लावणी, उडुव, कुचुम्बिणी, चरस्त्रयणिका, अलग्न, परिवस्त्र-वणिका, समप्रहार, कुडुपवारणा, करवारणा, दंडहस्त, धनुख।

(10) भेरी -

हिन्दी शब्द सागर में भेरी का अर्थ ढोल या नगाड़ा बताया गया है। परन्तु भेरी यह मृदंग के समान आकार वाला एक अवनद्ध वाद्य माना है। यह धातु का बना होकर इसके दो मुख होते थे। शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर में भेरी के उल्लेख के अनुसार-

(6/1149-1151) - भेरी का अंग तांबे के धातु से बनाया जाता था। उसके दो मुख होते थे। मुखों का व्यास 24 अंगुल प्रमाण का होता था। इनके (मुखों के) ऊपर उसी आकार के लोहे के कड़े चढ़ाये जाते थे। कड़ो से युक्त मुख छेदयुक्त चमड़ी से ढके रहते थे। दोनों छेदयुक्त मुखों की चमड़ी को डोरी से आपस में कस दिया जाता था। भेरी के अंग के बीचो बीच सूत की डोरी का बन्धन होता था। दायें मुख पर लकड़ी के कोण से दायें हाथ से तथा बाये मुख पर बायें हाथ से प्रहार कर वादन किया जाता था। इस प्रकार से बड़ी और गंभीर ध्वनि होती थी। शारंगदेव ने भेरी पर केवल तंकार यह मुख्य पाटवर्ण बताया है।

(11) निःसाणः -

निःसाण वाद्य का वर्णन 'संगीत-रत्नाकर' में (6/1152-1156) मिलता है। यह वाद्य धातु निर्मित होकर एक मुखी था। कांसे से बना उत्तम, तांबे से बना मध्यम, तथा लोहे से बना कनिष्ठ प्रकार का बताया है। इसका आकार अर्ध यवाकृति होता था। ऊपर से इसका मुख छोटा होता था। इसके अंग (पात्र में) कांसा भरा जाता था जिससे इसके द्वारा आँसदार ध्वनि उत्पन्न होती थी। मुख पर मढ़ा जाने वाला चमड़ा भेसें के अंग से प्राप्त होता था। मुख की चमड़ी (पुड़ी) में छेद किये होते थे। पेंदे में चमड़ी के वादी का कड़ा लगाया जाता था।

मुख की चमड़ी के छेदों से पिरोकर वादियों को नीचे के कड़े में से निकाला जाता था। इस प्रकार चमड़ी को मुख पर कस दिया जाता था। चर्म लगे कोणों से इसका बादन होता था। इसका वादन युद्ध के समय अधिक होता था, जिससे शत्रु भयभीत हो जाते थे तथा वीर योद्धाओं में जोश पैदा होता था।

(12) तुम्बकी –

(6-1157) रत्नाकर में शारंगदेव ने इसका उल्लेख किया है। शारंगदेव ने तुम्बकी इस वाद्य का आकार, अंग, बनावट, आदि निःसाण के समान ही बताया है। आकार (शेप) वैसा ही होने पर इसका अंग निःसाण के अंग से छोटा होता था। इसका मुख भी अर्थात् छोटा होता था। इसी कारण इसकी आवाज निःसाण के आवाज के समान बड़ी नहीं होती थी।

(13) करटा -

'संगीत रत्नाकर में (6/1085) करटा इस वाद्य का उल्लेख शारंगदेव ने किया है। "संगीत समयसार", "संगीत मकरंद" आदि ग्रन्थों में इस वाद्य का उल्लेख मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह मध्यकाल का वाद्य रहा होगा। अलग अलग पुस्तको में प्राप्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने इसका आकार प्रकार अलग-अलग बताया है।

संगीत रत्नाकर में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। उसके अनुसार, करटा वाद्य का अंग (खोड़) बिजसार (बीज) के लकड़ी का बना होता था। इसकी लम्बाई 21 अंगुल होती थी। दो मुख होते थे। मुखो का व्यास 12 अंगुल अथवा 14 अंगुल था। इसके अंग की परिधि 40 अंगुल बताई है। दोनों मुखो पर दो कड़े होते थे, ये कड़े डोरियों से अथवा चमड़ी से गूंथे होते थे। उनका घेर 42 अंगुल का होता था। इस कड़ो (गजरे) में मुख के चमड़े को बद्ध कर दिया जाता था। कड़े में 14 छेद होते थे। दोनों मुखो के कड़ों को बद्ध कर दिया जाता था। कड़े में 14 छेद होते थे। दोनों मुखो के कड़ों में बने छेदों में से 1-1 छिद्र छोड़ते हुए क्रमशः बद्धी डालकर दोनों मुख (पुडियों) को आपस में कस दिया जाता था। इस प्रकार की बद्धी की कसाई मछली के आकार सरीखी दिखती थी तथा इस कारण कसाव भी ठीक रहता था। दोनों कड़ों के पास चमड़ी की पट्टियां बांध दी जाती थी। बजाते समय इन पट्टियों में डोरी बांधकर गले में टांगा जा सकता था अथवा कमर में बांधा जा सकता था। इसका वादन दो कुडुप्पो से (लकड़ी के कोणों से) होता था। इसके पाट शारंगदेव ने करट, तिरिकि, तिरिकिरि, बताये हैं।

(14) घट -

घट का उल्लेख प्राचीन काल से मिलता है। इस वाद्य का विस्तृत विवेचन मध्यकालीन ग्रन्थों में ही मिलता है। प्राचीनकाल में पाणिनी ने अष्टाध्यायी में (ईसा पूर्व 7 वी सदी) तथा भरत ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में जिस दर्दर वाद्य का उल्लेख किया है, वह दर्दर-वाद्य घट वाद्य के समान ही था। चमड़ी से मढ़े जाने वाले घट वाद्य का विकास त्रिमुखी एवं पंचमुखी घटों के रूप में हुआ, ऐसा भी उल्लेख है। प्राचीन एवं मध्यकालीन शिल्प चित्रों में इस प्रकार के वाद्यों का संकेत मिलता है। तामिलनाडु में पंचमुखी वाद्य का स्वरूप देखने को मिलता है। विकास के साथ साथ यह घट बिना चमड़े से मढा भी, वादन प्रयोग में आने लगा। वर्तमान में दक्षिण भारत में घटम् के रूपमें यह प्रयोग में आता है। "संगीतसार" ग्रन्थ में माटी के बने, खुले मुंह के एवं धातु से बने चमड़े से मढ़े घटों का उल्लेख है। भारतीय आदिवासी लोगों में प्रयुक्त किये जाने वाले, मिलाव (केरल), पाबूजी के माटे (राजस्थान) घुमट (गोवा). कुडमुल (तामिलनाडु) आदि वाद्य इसी श्रेणी के वाद्य हैं।

"संगीत रतनाकर" में (6/1086, 1087) घट वाद्य का उल्लेख शारंग देव ने किया है। घट बड़े उदर (पेट) और छोटे मुख का होता था। इसके मुख के व्यास का उल्लेख नहीं किया है। घट का अंग चिकनी माटी का बनाकर उसे अच्छी तरह से पकाया जाता था। यह मजबूत होता था जिससे आसानी से टूटता नहीं था। इसके मुख पर चमड़ा कसकर बांध दिया जाता था। इसका वादन दोनों हाथों से किया जाता था। मर्दल के पाटवर्ण ही इसके पाटवर्ण थे।

(15) ढवस -

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रंथ (6-09-94) में दवस वाद्य का उल्लेख किया है। यहाँ इसके अंग की लकड़ी का उल्लेख न होने से यह रक्तचंदन या खेर की लकड़ी का समझना चाहिये। (6/1158) इसकी लम्बाई 1 हाथ की होती थी। लकड़ी को अन्दर से खोखला किया जाता था। वाद्य के खोड की परिधि (गुलाई) 40 अंगुल प्रमाण की थी। दोनों मुखो का व्यास 12 अंगुल प्रमाण का होता था। दोनों मुखों पर बारीक बद्दी से बने कड़े (गजरे) होते थे जिनमें मुख के ऊपर मढ़ा जाने वाला चमड़ा बद्ध किया जाता था। कड़े (गजरे में) 7 छिद्र होते थे। चर्म युक्त (बद्ध) कड़ों को (पुडी को) दोनों मुखो पर बिठाकर छिद्रों में से डोरी डालकर दोनों मुख कस दिये जाते थे। वाद्य में एक डोरी अथवा पट्टी बांध दी जाती थी जिससे वाद्य को कन्धे पर या गले में लटकाया जा सके। बांये मुख पर बांये हाथ से तथा दांये मुख पर कुडुप से (लकड़ी के कोण) वादन किया जाता था। इसमें ढेंकार युक्त पाटवर्ण बताये हैं।

(16) ठक्का -

शारंगेदव के ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" में (6/1095-96) ढक्का वाद्य का इस प्रकार उल्लेख है - ढक्का लगभग ढवस के समान ही था। इसमें अन्तर केवल यह था कि ढक्का के मुखो का व्यास 13 अंगुल प्रमाण का था।

(17) कुडुक्का -

इसका उल्लेख "संगीत रत्नाकर", संगीतसुधा, वाद्य प्रकाश आदि ग्रन्थों में उपलब्द है। शारंगदेव के ग्रन्थ संगीत रत्नाकर" के (6/1097) अनुसार अर्गला विहीन हुडुक्का ही कुडुक्का थी। इसका वादन हाथ से एवं कोण से बताया है।

(18) कुडुवा -

इस वाद्य का उल्लेख 'मानसोल्लास' 'संगीत-रत्नाकर', 'संगीतसुधा', संगीतसार आदि ग्रन्थों में मिलता है। "संगीत रत्नाकर" के अनुसार इसका वर्णन इस प्रकार है - (6/1098-1102) यह वाद्य बिजसार (म्हालसुंग) के वृक्ष के लकड़ी से बनाया जाता था। यह बीच में खोखला होता था। इसकी लम्बाई 21 अंगुल प्रमाण की थी। दो मुख होकर दोनों का व्यास 7 अंगुल का था। इसका आकार एक से मुटाई का होता था। दोनों मुखो के कड़े (गजरे) बारीक वादियों को गूंथकर बनाये जाते थे। कड़े (गजरे) की मुटाई 3 अंगुल प्रमाण की होकर उसके उपर त्रिकोणी भाग उठे हुए होते थे। खोड या अंग का मध्यभाग अन्दर से खोखला होकर उसका व्यास 9 अंगुल प्रमाण का होता था। कड़ो में 7 छिद्र होते थे। कड़े वाद्य के मुख पर लगने वाले या मढ़े जाने वाले चर्म से बद्ध होते थे। दोनों मुख चर्मयुक्त कड़ो से ढक दिये जाने थे तथा डोरी को दोनों कड़ो के छोदों में पिरोकर आपस में बांधकर कस दिया जाता था। यह कुडुवा झेंकार रहित, फ्रेंकार प्रचुर पाटवर्णों में, मोम लगे दो कोणों से बजाती जाती थी।

(19) रुंजा -

रुंजा या रुंज इस वाद्य का उल्लेख "संगीत रत्नाकर" ग्रन्थ के अलावा संगीत पारिजात, संगीतसार इन ग्रन्थों में भी मिलता है। शारंगदेव ने अन्य विद्वानों ने ऐसा उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त पाटवर्णों का उल्लेख मतंग मुनि के नाम किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि मतंग मुनि के काल 8वीं सदी में इस वाद्य का प्रचार रहा होगा। मतंग मुनि द्वारा लिखित ग्रंथ "बृहत् देशी" का वाद्यध्याय उपलब्ध नहीं है। 'संगीत रत्नाकर' के (6/1103-1109) अनुसार रुन्जा वाद्य का वर्णन इस प्रकार है -

यह बीज (खेर), रक्त चंदन आदि के लकड़ी से बनती थी। इसका आकार एक-सा होता था। इसकी लम्बाई 18 अंगुल प्रमाण की होती थी। 11 अंगुल प्रमाण का, दोनों मुखों का व्यास होता था। दोनों कड़ों को चमड़े से बद्ध किया जाता था। बांये मुख पर दो कड़े (चर्मयुक्त) होते थे। एक बड़ा (पुडी) मुख के ऊपर लगा तथा दूसरा कड़ा 4 अंगुल प्रमाण का (चर्मयुक्त) होता था। दूसरे चार अंगुल प्रमाण के चर्मयुक्त कड़े एवं मुख के अन्तराल को स्नायू (तंतू) के नलिकाओं से जोड़ दिया जाता था। बांये मुख में एक छिद्र होकर उसमें सूत से बनी डोरी डाल दी जाती थी। रूंजा के दांये और बांये दोनों मुखों के कड़ों को सूतकी डोरी से क्रमशः बांध कर वाद्य से कस दिया जाता था। चर्मबद्ध कडो (गजरों) में 7-7 छिद्र होते थे। पौने दो हाथ लम्बी नागपाश के समान मजबूत सूत की डोरी बांधकर कन्धे या गले में लटका कर वादन किया जाता था। संकार युक्त ध्वनी के कारण यह रूंजा कहलाई। इसकी देवता भृंगि बताई है। शारंगदेव कहते हैं कि मतंग (मुनि) के अनुसार क, त, द, व, न, म और र आदि पाटवर्ण, तथा अन्य आचार्यों के अनुसार क, र, ग, ध, ट, न, ख और ह ये पाटवर्ण इस वाद्य पर निकलते हैं। "संगीत पारिजात" ग्रन्थ के अनुसार यह वाद्य लकड़ी या धातु से बना, 7 मुट्ठी लम्बा, मुख एक विलात, नरम चर्म, दो मुख, डोरी से मुख बद्ध, डोरी में छल्ले, इस प्रकार का होता था। दांये मुख को कोण से घिसकर तथा बाएँ मुख को लकड़ी से पीटकर इसका वादन होता था।

(20) डमरूक या डमरू -

इस वाद्य का भारत में धार्मिक, आध्यात्मिक, वैदिक संस्कृति गे गहरा संबंध रहा है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार - प्रलय काल में भगवान शिव ने तांडव नृत्य किया और उसी समय डमरू रूप आयुध का वादन किया। इसी आधार पर ब्रह्माजी ने मृतिका से बने चर्मवाद्य, डमरू का निर्माण किया। माहेश्वर सूत्रानुसार - 'सृष्टि का उदभव डमरू से हुआ है।'

नंदिकेश्वर कारिका के अनुसार - नृत के अवसान के पश्चात् नट्राज शंकर जी ने सनकादि सिद्धों का उद्धार करने हेतु अपने अगोचर रूप को प्रकट करने के लिये चौदह बार डमरू का वादन किया था। जिससे वाणि के 14 मूलभूत सूत्रों का अविर्भाव हुआ।

रावण कृत 'शिव तांडव स्तोत्र' अनुसार - 'डमरू के मंगलध्वनि मय शब्द सहित जो प्रचण्ड तांडव नृत्य में तल्लीन है उस भगवान शिव की जय हो'।

प्राचीन काव्यों में डमरू को डोरू, डेरू आदि नामो से सम्बोधित किया गया है। संगीतसार, संगीत दर्पण, नाट्यशास्त्र, संगीत- रत्नाकर अमरकोष, संगीत पारिजात, संगीत मकरंद, आदि ग्रन्थों में डमरू का उल्लेख है, इससे यह सिद्ध होता है कि डमरू यह वाद्य प्राचीनतम् अनवद्ध वाद्य है।

"संगीत-रत्नाकर" में शारंगदेव ने इस वाद्य का डमरूक नाम से वर्णन किया है, वह इस प्रकार -

शारंगदेव के अनुसार इसकी लम्बाई एक बिलात थी तथा दोनों मुख आठ अंगुल प्रमाण के होते थे। उसके कड़ों से युक्त मुखो पर चमड़ा बंधा रहता था। इस वाद्य का मध्य भाग त्रिवली समान छोटा होकर सूत की डोरियों से बंधा रहता था। यह डोरियां चमड़े के छिद्र से आई डोरियों को कस देती थी। मध्य भाग में एक छोर से बंधी होकर दूसरे छोर पर माटी और मोम की बनाई जाती थी। इन्हीं घुड़ीदार डोरियों से इसका वादन होता था। डमरुक के मध्य भाग को हाथ में पकड़कर बजाया जाता था। इसमें डग-डघ ये पाटाक्षर निकलते थे, कुछ आचार्यों ने कख, रट ये वर्ण अधिक बताये हैं। ऐसा उल्लेख शारंगदेव ने किया है।
वर्तमान काल में डमरू इस वाद्य का प्रयोग मन्दिरों में या तमाशा दिखाने वाले लोगों द्वारा अधिक किया जाता है।

(21) डक्का -

यह हुडुक्का जाति का वाद्य है। इस वाद्य का उल्लेख 'संगीत रत्नाकर', संगीतसार, संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों में किया गया है। शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर के (6/1113-1119) अनुसार डक्का का वर्णन इस प्रकार है। यह एक बिलात लम्बी होकर बीच में से पतली रहती थी उसके दोनों मुखों का व्यास आठ अंगुल प्रमाण का होता था। लकड़ी के खोड की मुटाई (जो बीच से पोली होती थी) मुख पर अर्ध अंगुली के बराबर होती थी। मुखो के ऊपर की लकड़ी में 8 (दांये मुख पर 4 बांये मुख पर 4) कीले गाडी जाती थी। प्रत्येक मुख पर दो कोलें ऊर्ध्वमुखी तथा दो कीले अधोमुखी होती थी। इन कीलों में मुख पर 2-2 ताँते बाँधी जाती थी। इन तांतों द्वारा मुख पर मढे चमड़े से ध्वनि उत्पन्न करने के लिये तांतों में छोटी कांडिया बांध दी जाती थी। इसके शेष लक्षण हुडुक्का समान समझिये। इसका वादन हात से तथा कुडुप (शाला की) से किया जाता था। इसके दोनों मुखों पर चमड़ा रहता था। शारंगदेव के अनुसार इसके वादन में हाथ के प्रहार से डंकार और कुडुप के आघात से घट, डगि पाटवर्ण बताते गये हैं। यह भी बताया है कि कुछ आचार्य न, ग, क, ख, र, ट ये पाटवर्ण बताते हैं। एक बिलात लम्बी डक्का उत्तम उसके एकअंगुल छोटी होने पर मध्यम तथा दो अंगुल छोटी होने पर कनिष्ठ डक्का मानी जाती थी।

(22) मंडिडक्का -

शारंगदेव के ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' के अनुसार (6/1120-1125) डक्का यही मंडिडक्का होती थी। इसमें अंतर यह था कि मंडिडक्का की लम्बाई 18 अंगुल प्रमाण की थी। दोनों मुख का व्यास अंदर से (लकड़ी की मुटाई छोड़कर) आठ अंगुल प्रमाण का होता था। मध्य भाग की परिधि 16 अंगुल प्रमाण की होती थी। इसमें अर्गला नहीं होती थी। उसी प्रकार बीच की पट्टियां नही होती थी। उत्कक्षक (ऐसी डोरी जिसके टोंक ऊपर निकले हो) तथा डोरियां बीच में होती थी। उत्कक्षक व दोनों डोरियों को बाया अंगुठा और अंगुलियों से पकड़कर कड़े का

आखरी भाग तर्जनी से दबाकर मंडिडक्का को जो जांघ या घुटने पर रखा जाता ता। इसके बाद बाये हाथ से इसका वादन किया जाता था। कुछ आचार्य (शारंग देव के अनुसार) इसका वादन कुडुप से बताते हैं।

(23) डक्कुली -

संगीत रत्नाकर ग्रंथ के (6/1126-1131) अनुसार -

डुक्कली कांसा (धातु), बैल के सींग, अथवा हाथी दांत से बनाई जाती थी। लम्बाई 5 अंगूल प्रमाण तथा दोनों मुखो का व्यास 5 अंगूल प्रमाण का होता था। इसके मुख पर भेड़ का चमड़ा मुखो पर कड़ो द्वारा लगाया जाता था। ये कड़े अंग के बनावट के अनुसार (कासा, सींग या हाथी दांत के) कासे, तांबे, या लोहे के लगाये जात थे। बद्ध कडो में 5-5 छेद होते थे। इन कडो को छेदो में से डोरी पिरोककर अंग के मुखों पर कस दिया जाता था। मध्यका भाग बीच में से सूत की डोरी द्वारा इस प्रकार बंधा रहता था कि वह न जादा ढीला हो न जाता कसा हो। डोरी पर अनामिका रखकर, मध्यमा तथा तर्जनी कडे पर रखे, अंगूठा ऊपर की तरफ रहे तथा दूसरे चक्र पर हो इस प्रकार हाथो की बैठक करके, बंधी हुई सूत की डोरी जिसके टोक पर मोम लगा हो उससे दुम, दुम, आवाज कराते हुए इसका वादन होता था। आचार्य इसी ध्वनि को तुं, तुं कहते थे। मृदंग पर निकलने वाले पाटवर्ण ही डकुली के पाटवर्ण माने जाते थे।

(24) सेल्लुका -

"संगीत- रत्नाकर" के अनुसार (6/1132-1136) सेल्लुका वाद्य का वर्णन इस प्रकार है -

यह (वाद्य) बिजसार के लकड़ी से बनाई जाती थी। इसका खोड एक से गुलाई का होता था जो बीच में से खोखला होता था। वाद्य की लम्बाई 26 अंगुल प्रमाण तथा वाद्य की परिधी 30 अंगुल प्रमाण थी। शारंगदेव ने मुखो के व्यास को 10 अंगुल प्रमाण का बताया है। किन्तु कुछ आचार्य इसे 11 अंगुल प्रमाण भी मानते थे। मुख की अपेक्षा, 1 अंगुल प्रमाण से बड़ी उद्दली (चमड़ी) होती थी। मुखों पर चमड़ी के ताँत से बने हुए मुखों के आकार के 1 अंगुल मोटे 2 कड़े जिसमें उद्दली (चमड़ा) बंधी हो, वह लगाये जाते थे। इन कड़ों (गजरो) में 6-6 छिद्र होते थे। इन छिद्रों में से सूत की डोरी को डालकर दोनों मुखो को अंग पर कस दिया जाता था। ये कड़े मुख की अपेक्षा 1-1 अंगुल प्रमाण में उठे हुए रहते थे। दांये मुख पर हाथ, वक्रकाकर छड़ी, धारण कर उससे तथा बांये मुख का बाँये हाथ से वादन किया जाता था। इस वाद्य के पाट दक्षिण मुख पर धिकार तथा वाम मुख पर झेंकार बताये हैं।

(25) भाण -

"संगीत रत्नाकर" के (6/1140) अनुसार -

यह वाद्य झल्लरी के वजन के आधे वजन का अर्थात् 12- ½ पल (लगभग 750 ग्राम) होता था। इसके खोड की परिधि (घेरा) 12 अंगुल प्रमाण होती थी। बाकी सारे लक्षण झल्लरी समान होते थे।

(26) त्रिवली -

इस वाद्य का उल्लेख मानसोल्लास, संगीत-रत्नाकर, संगीत-सुधा, संगीत-वाद्य प्रकाश आदि ग्रन्थों में मिलता है। संगीत-रत्नाकर के (6/1141-1143) अनुसार -

इस वाद्य की लम्बाई एक हाथ की होती थी तथा यह लकड़ी से बनी तथा बीच में खोखली होती थी। दोनों मुखों का व्यास सात अंगुल प्रमाण का होता था। खोड या अंग इतना मोटा होता था कि वह हाथ में (पंजे में) आसानी से पकड़ में आ जाए। दोनों मुखों पर नरम तथा पतली चमड़ी, लोहे के (मुख के आकार के) कड़ों में बद्ध होती थी। इस चमड़ी में बाहर के बाजू में 7-7 छिद्र होते थे। चमड़ी युक्त दोनों मुखो के कड़े, छिद्रों में डोरी डालकर आपस में बांध दिये जाते थे, और मुखो पर कस दिये जाते थे। वादियों या डोरियों को मध्य के पतले भाग में ऊपर से सूत की डोरी से लपेट दिया जाता था। बीच की डोरियों में से एक डोरी इतनी लम्बी (एक हाथ) होती थी कि इससे वाद्य को आसानी से कन्धे पर लटकाया जा सके। कंधे से लटकाकर इसका वादन किया जाता था। इसमें त, दा, दो, द ये वर्ण बजते थे। इसका वादन दोनों हाथों से किया जाता था।

(27) त्रिकुला -

संगीत-रत्नाकर के (6/1144-45) के अनुसार -

त्रिवली समान किन्तु 11 अंकुल व्यास के मुख, की 20 अंगुल प्रमाण लम्बी, 5 – ½ अंगुल प्रमाण का मध्य भाग, तथा डोरी से बंधी त्रिकुल्या होती थी।

विशेष - मृगदम्, पखावज, तबला तथा अन्य अवनद्ध वांद्यो का विवेचन अलग-अलग अन्य अध्यायों में किया गया है।

स्वयं जांच अभ्यास 1

3.1 नाट्यशास्त्र किसने लिखा है?

क) भरत

ख) द्तिल

ग) विक्रांत शर्मा

घ) कल्लिनाथ

3.2 संगीत रत्नाकर किसने लिखा है ?

क) कोलाहल

ख) शारंगदेव

ग) दलितं

घ) डॉ. राजीव शर्मा

3.3 नाट्यशास्त्र में कितने वाद्यों का उल्लेख है?

क) 8

ख) 11

ग) 10

घ) 1

3.4 संगीत रत्नाकर में कितने वाद्यों का वर्णण है?

क) 5

ख) 10

ग) 27

घ) 23

3.5 ताल शब्द की उत्पत्ति किस धातु से हुई है?

क) तल

ख) सोना

ग) पीतल

घ) जल

3.6 पंचमुखी वाद्य का स्वरूप कहाँ देखने को मिलता है ?

क) गुजरात

ख) तमिलनाडु

ग) संजौली

घ) तिर्मली

3.7 कूडुवा वाद्य किस लकड़ी से बनता है?

क) तुन्नी

ख) अखरोट

ग) बिजसार

घ) शीशम

3.8 बृहत् देशी ग्रन्थ किसने लिखा ?

क) सुनील वर्मा

ख) शिल्ली

ग) वरुण

घ) मातंग मुनि

3.9 प्रलय काल में भगवान् शिव ने तांडव नृत्य करते समय कोनसा वाद्य बजाय था ?

क) तबला

ख) सितार

ग) पखावज

घ) डमरू

3.10 त्रिवल्ली वाद्य लकड़ी से बनी तथा बीच में खोखली होती हैं ?

क) सही

ख) गलत

3.4 सारांश

शास्त्रीय संगीत की वादन विधा के अंतर्गत वादन के संदर्भ में, नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में पाए जाने वाले अवनध वाद्य जैसे पुष्कर, मृदंग, मर्दल, पणव, आवज, दुर्दर, दुंदुभी, झल्लरी, पटह, भेरी, निःसाण, तुम्बकी, करटा, घट, ढवस, दक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रुंजा, डमरू, डक्का, मनडिडका, डक्कुली, सेल्लुका, भाण, त्रिवली, त्रिकुला के बारे में जाना जाता है । शास्त्रीय संगीत में तालों के प्रस्तुतिकरण से पहले इन प्राचीन अवनध वाद्यों की जानकारी से प्रस्तुतिकरण में सहायता मिलती है।

3.5 शब्दावली

- लय: गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।
- बिजसार : ये एक प्रकार की लकड़ी होती है जिससे अवनध वाद्य का निर्माण होता है

3.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

3.1 उत्तर: क)

3.2 उत्तर: ख)

3.3 उत्तर: ग)

3.4 उत्तर: घ)

3.5 उत्तर: क)

3.6 उत्तर: ख)

3.7 उत्तर: ग)

3.8 उतर: घ)

3.9 उत्तर: घ)

3.10 उत्तर: क)

3.7 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश संगीत कार्यालय हाथरस 204101 (उ० प्र०)

3.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

3.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में वर्णित अवनध वाद्यों का विस्तारपूर्वक परिचय लिखिए ?

इकाई -4
गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
4.1	भूमिका
4.2	उद्देश्य तथा परिणाम
4.3	ध्रुवपद के साथ बजने वाले ताल
4.3.1	धमार और होरी के साथ बजने वाले ताल
4.3.2	होली के साथ बजने वाले ताल
4.3.3	ठुमरी के साथ बजने वाले ताल
4.3.4	विलम्बित या बड़ा ख़याल के साथ बजने वाले ताल
4.3.5	छोटा या द्रुत ख़याल के साथ बजने वाले ताल
4.3.6	तराना के साथ बजने वाले ताल
4.3.7	भजन, गीत, ग़ज़ल के साथ बजने वाले ताल
	स्वयं जांच अभ्यास1
4.4	सारांश
4.5	शब्दावली
4.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नोंकेउत्तर
4.7	संदर्भ
4.8	अनुशंसित पठन
4.9	पाठगत प्रश्न

4.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह चौथी इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल को विशेष रूप से देखा जाता है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत के कलाकार भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले तालों का प्रयोग करते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी भिन्न भिन्न गायन शैलियों जैसे ध्रुवपद, धमार, होरी, होली, ठुमरी, विलंबित या बड़ा ख़याल, छोटा या द्रुत ख़याल, तराना, भजन, गीत, ग़ज़ल, के साथ बजने वाले ताल को लिखने और बजा सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- ध्रुवपद , धमार , होरी , होली की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- ठुमरी , विलंबित या बड़ा ख़याल , छोटा या द्रुत ख़याल कि जानकारी देना।
- तराना , भजन , गीत , ग़ज़ल की जानकारी प्रदान करना।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी वादन के तकनीकी पहलुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- ध्रुवपद , धमार , होरी , होली , ठुमरी , विलंबित या बड़ा ख़याल को लिखने और समझने की निपुणता प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल को समझने में सक्षम होंगे।
- छोटा या द्रुत ख़याल , तराना , भजन , गीत , ग़ज़ल को लिखने और समझने में सक्षम होंगे
- भिन्न भिन्न गायन शैलियों के साथ बजने वाले ताल के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

4.3 ध्रुवपद के साथ बजने वाले ताल

ध्रुवपद-

गायन की यह अत्यन्त प्राचीन शैली है, जिसमें खुले गले से आवाज लगायी जाती है। बुलन्द आवाज में गायन होने के कारण इसकी संगति पखावज पर होती है, और इसीलिए इसमें खुले अंग के ताल प्रयुक्त होते हैं। ध्रुवपद गायन की संगति हेतु मुख्य रूप से 12 मात्रे के चारताल (चौताल) का प्रयोग किया जाता है। 10 मात्रे के सूलताल (उसूले-फाख्ता) का भी द्रुतलय में ध्रुवपद की संगति हेतु प्रयोग होता है। यद्यपि इन दिनों प्रचार में नहीं हैं फिर भी 7 मात्रे के तीवरा ताल, 18 मात्रे के लक्ष्मी ताल, 18 मात्रे के ही मत्त ताल, 22 मात्रे के अष्टमंगल और 28 मात्राओं के ब्रह्म ताल का भी ध्रुवपद गायन की संगति हेतु प्रयोग होता था। इस प्रकार की गायन की संगति हेतु खुले और जोरदार बोलों का प्रयोग किया जाता है। सह-संगति (लड़न्त), उपज और लयकारियों तथा सम-विषम का रोमांचक प्रयोग होता है, इस गायन शैली और उसकी संगति में।

4.3.1 धमार और होरी के साथ बजने वाले ताल

धमार और होरी -

धमार नाम से जो गायन शैली हिन्दुस्तानी संगीत में प्रचलित है, वस्तुतः वह होरी गायन है, और इसमें कभी राधा-कृष्ण तो कभी दूसरे चरित्रों के होली खेलने का संगीतबद्ध वर्णन होता है। यह ध्रुवपद गायन के बाद आविष्कृत हुई उसी शैली से प्रेरित गायन शैली है। इसकी संगति 14 मात्रे के धमार ताल द्वारा होने के कारण इसे धमार गायकी भी कहते हैं। ध्रुवपद की ही तरह इसकी संगति भी मुख्य रूप से पखावज पर ही होती है। इसमें भी साथ संगति (लड़न्त) का खूब प्रयोग होता है। गायक और वादक दोनों ही एक-दूसरे को चमत्कृत करते हुए चलते हैं। भिन्न-भिन्न लयों में निबद्ध उपजों एवं अतीत, अनागत आदि सम प्रकारों का प्रयोग इस गायकी की विशेषता है, इसलिए इसकी संगति भी इसी अंग से की जाती है।

4.3.2 होली के साथ बजने वाले ताल

होली -

होरी गायन का ही दूसरा रूप है होली। होरी गायन जहाँ धमार नाम से शास्त्रीय संगीत की प्राचीन और गम्भीर विधा मानी जाती है, वहीं होली गायन अपेक्षाकृत उपशास्त्रीय एवं सुगम। प्रायः कलाकार अपने गायन का समापन इससे करते हैं। लेकिन, पिछले कुछ वर्षों में उपशास्त्रीय संगीत के अनेक कलाकारों ने अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ की है, और अब उपशास्त्रीय संगीत का ही कार्यक्रम भी होता है। स्वाभाविक है कि इसका लाभ होली गायन को भी मिला। इसकी संगति मुख्य रूप से 14 मात्रे के दीपचंदी ताल द्वारा होती है। स्थायी की समाप्ति के बाद बढ़ी लय कायम करके 16 मात्रे में लग्गी-लड़ी का प्रयोग होता है। इसमें गायक तरह-तरह के बोल बनाता है, और तबला वादक लग्गी-लड़ी का प्रयोग करता है, और फिर अन्त में तिहाई दोनों साथ लेते हैं। यहाँ यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि बोल बनाव के समय सह संगति की स्थिति होते हुए भी यहाँ लड़न्त वाली स्थिति नहीं होती है। जैसा कि ध्रुवपद, धमार की संगति में होता है। कभी-कभी दीपचंदी की जगह 16 मात्रे के जत, या 16 मात्रे के अद्दा (पंजाबी) ताल का भी प्रयोग इसकी संगति के लिए होता है। दादरा, कहरवा में भी यदा-कदा होली गायन होता है।

4.3.3 ठुमरी के साथ बजने वाले ताल

ठुमरी-

ठुमरी गायकों के अनुसार ठुमरी शब्द की व्युत्पत्ति ठुमक शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है ठुमकना। ठुमकने शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह अपेक्षाकृत शृंगारिक और चंचल प्रकृति की गायन शैली है, किन्तु चंचलता से इसका अर्थ जितना चंचल लगा लिया जाता है, उतनी अधिक चंचल भी नहीं है यह गायन है शैली। ठुमरी वह गायकी है, जिसमें मात्र मस्तिष्क ही नहीं, दिल की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुतः इसे चंचल और क्षुद्र गायन शैली की संज्ञा देने वालों का आशय मात्र यह था कि शृंगार और लौकिक प्रेम इसका मुख्य विषय होता है, साथ ही सौन्दर्योत्पत्ति हेतु इसमें रागों की शुद्धता का प्रायः कठोरता से पालन नहीं किया जाता है।

ठुमरी की संगति हेतु दीपचंदी (14 मात्रा), जत (16 मात्रा), पंजाबी (16 मात्रा), कहरवा (8 मात्रा) और दादरा (6 मात्रा) का मुख्य रूप से प्रयोग होता है। दृष्टव्य है कि इन्हीं तालों का प्रयोग होली गायन की संगति हेतु भी होता है। किन्तु होली की लय अपेक्षाकृत कुछ तेज रहती है, जबकि ठुमरी की धीमी। ठुमरी का आरम्भिक चरण अर्थात् स्थायी विलम्बित लय में गाया जाता है, जबकि उसके समापन में बढ़ी लय कायम करके द्रुत लय त्रिताल में लग्गी-लड़ी का वादन किया जाता है। गायक के बोल बनाव के समय लग्गी-लड़ी जो मुख्यतः बराबर लय में होते हैं - का वादन ही खुशनुमा प्रतीत होता है, अन्त में दोनों कलाकार - गायक और वादक एक छोटी सी तिहाई लेकर सम पर आते हुए फिर पुरानी लय और ताल पर वापस लौटते हैं,और इस प्रकार बन्दिश समाप्त होती है।

टप्पा गायन की संगति भी लगभग इसी प्रकार होती है 1

4.3.4 विलंबित और बड़ा ख़याल के साथ बजने वाले ताल

विलम्बित या बड़ा ख्याल –

बड़ा ख्याल के नाम से प्रसिद्ध विलम्बित लय का ख्याल भारतीय संगीत को मुगल काल की देन है। ध्रुवपद और धमार गायन में ताल रहित आलाप की जो प्रथा है, उसे तालबद्ध रूप में प्रस्तुत करने हेतु इस शैली का

निर्माण हुआ। स्वरों का गम्भीर प्रयोग इसकी विशेषता है, इसीलिए इसकी लय अपेक्षाकृत कम रखी जाती है, ताकि बार-बार सम दिखलाने के उतावलेपन से मुक्त रहकर गायक एक-एक स्वरों का क्रमबद्ध और स्थिर विकास कर सकें।

इस गायन शैली की संगति के लिए मुख्य रूप से तीन तालों का प्रचार है - एकताल (12 मात्रा), तिलवाड़ा (16 मात्रा) और झूमरा (14 मात्रा)। यदा-कदा आड़ा चारताल (14 मात्रा) का प्रयोग भी होता है।

उस्ताद अमीर खाँ (इन्दौर वाले) ने इस गायन शैली को अत्यधिक गम्भीर बनाने हेतु विलम्बित ख्याल को अति विलम्बित लय में प्रस्तुत करने की परम्परा का सूत्रपात किया, अतः 12 मात्रे का एकताल जो विलम्बित लय में 24 मात्रे का समय लेता था, 48 मात्रे का स्थान लेने लगा। इसी प्रकार 14 मात्रे का झूमरा भी 28 से 56 मात्रे में और 16 मात्रे का तिलवाड़ा 32 से 64 मात्राओं में परिवर्तित होने लगा।

किसी भी रचना में उसके ताल स्वरूप का दिग्दर्शन होना बहुत जरूरी है - यह संगीत मनीषियों का विचार है, और इस कसौटी पर ख्याल का अति विलम्बित रूप खरा नहीं उतरता। अतः उस्ताद अमीर खाँ के जीवन काल में ही इस शैली की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगने लगा था, लेकिन उस्ताद की गम्भीर गायकी और स्वरों का गम्भीरतम प्रयोग और क्रमबद्ध विकास लोगों को इस प्रकार अपने स्वर पाश में बाँध लेता था कि सारे तर्क खोखले प्रतीत होते थे। फलस्वरूप, उनकी स्वनिर्मित शैली उनके जीवन काल में काफी प्रसिद्ध हुई, किन्तु उनके निधन के बाद उनके अनेक सुयोग्य शिष्यों के प्रयासों के बावजूद इसकी लोकप्रियता घटने लगी। इसके पीछे कुछ दूसरे कारण भी थे। जैसे आपाधापी के इस माहौल में समयाभाव। आज जब 40-45 मिनट की अवधि में कलाकार को अपना कार्यक्रम पूरा करना पड़ता है, तब अमीर खाँ द्वारा विकसित की गयी शैली के अनुरूप न तो स्वरों का विस्तार हो सकता है और न तो लय की स्थिरता कायम रखी जा सकती है। फलस्वरूप, अति विलम्बित लय में गायन करने वालों की संख्या आज बहुत कम हो गयी है, और इतना ही नहीं, विलम्बित लय की गति भी इधर कुछ तेज हो गयी है।

चूँकि, विलम्बित लय की गति भी इधर कुछ तेज हो गयी है, अतः विलम्बित या बड़ा ख्याल की संगति के लिए कुछ ऐसे तालों का भी प्रचलन बढ़ा है, जो पहले उपयुक्त नहीं प्रतीत होते थे। 16 मात्रे के तीनताल के अलावा 10 मात्रे के झपताल ओर 7 मात्रे के रूपक इसी श्रेणी के ताल हैं।

इस प्रकार की गायन की संगति के लिए ठेकों को विलम्बित लय में स्थिर रखा जाता है। कुछ कलाकार बिलकुल सीधा ठेका पसन्द करते हैं, तो कुछ चाहते हैं कि ठेके के दो मात्राओं के बीच भराव रहे।

अतः तबला वादक के लिए उचित यही होता है कि गायक की रुचि जान ले। सम पर आते समय एक या दो मात्राओं का मुखड़ा या तिहाई लेने की भी प्रथा है इस गायन शैली में।

4.3.5 छोटा या द्रुत ख़याल के साथ बजने वाले ताल

छोटा या द्रुत ख्याल-

छोटा ख्याल के नाम से जिस रचना की प्रस्तुति होती है, वह मध्य और द्रुत लय में निबद्ध होती है। तीनताल, झपताल, एकताल आदि इसकी संगति हेतु विशेष प्रचलित हैं। किन्तु आड़ा चौताल, पंचम सवारी, तीवरा और बसन्त आदि तालों में भी छोटा ख्याल प्रस्तुत की जाती है। चूँकि, इसमें लयकारी और तिहाई युक्त तानें प्रयुक्त होती हैं, अतः तबला वादक को भी छोटे-छोटे मुखड़े, टुकड़े आदि बजाने का अवसर मिलता रहता है। कभी-कभी चमत्कार प्रदर्शन हेतु लड़न्त आदि भी हो जाती है, किन्तु उसका स्वरूप ध्रुवपद, धमार के लड़न्त से भिन्न होता है।

4.3.6 तराना के साथ बजने वाले ताल

तराना-

छोटा ख्याल जिस लय में समाप्त होता है, तराना वहाँ से शुरू। यह गायन शैली भी मुगल काल में आविष्कृत हुई। शुरू में इसके माध्यम से ईश्वर की प्रशंसा की जाती थी। इसकी भाषा मूल रूप से अरबी और फारसी होती है। किन्तु बाद में भाषा ज्ञान ठीक न होने के कारण तराना गायन निरर्थक शब्दों का पर्याय बन गया। इसमें नादिम, दिम, तनाना, आदि शब्दों के साथ सरगम एवं तबला, पखावज के बोलों का भी प्रयोग होता है। आज तराना गायन मुख्य रूप से तैयारी एवं चमत्कार प्रदर्शन हेतु किया जाता है, तीनताल, एकताल, झपताल एवं आड़ा चारताल आदि में तराना गाया जाता है, फिर भी तीनताल तराना गायन हेतु अधिक प्रचलित है।

4.3.7 भजन,गीत,ग़ज़ल, के साथ बजने वाले ताल

भजन, गीत, गज़ल –

ये सभी सुगम संगीत की विधाएँ हैं, और इनमें प्रायः सीधा ठेका और ठेके के कुछ प्रकारों का वादन किया जाता है, तथापि शास्त्रीय संगीत के कलाकार जब इन रचनाओं को प्रस्तुत करते हैं, तब वे उसमें शास्त्रीयता का रंग भी घोल देते हैं, और ऐसे समय में एक अन्तरा की समाप्ति के बाद लग्गी-लड़ी का भी प्रयोग होता है। लेकिन, यह प्रायः मुख्य कलाकार की इच्छा पर निर्भर करता है। गज़ल के लिए दादरा, कहरवा और रूपक जैसे ताल अधिक लोकप्रिय हैं। कुछ गज़लें झपताल में भी मिलती हैं। जबकि, गीत और भजनें प्रायः दादरा, कहरवा और रूपक के साथ-साथ झपताल, एकताल और पंजाबी (अद्दा) तालों में भी निबद्ध होती है।

स्वयं जांच अभ्यास 1

4.1 ध्रुवपद गायन की संगती किस वाद्य पे होती है ?

क) पखावज

ख) मृदंग

ग) तबला

घ) घंटी

4.2 धमार गायन का दूसरा नाम क्या है ?

क) ठुमरी

ख) होरी

ग) भजन

घ) टप्पा

4.3 होली गायन में मुख्य रूप से किस ताल में संगत होती है ?

क) दादरा

ख) झपताल

ग) दीपचंदी

घ) रूद्र ताल

4.4 ठुमरी कोनसी प्रकृति की गायन शैली है ?

क) गंभीर

ख) कठोर

ग) रौद्र

घ) चंचल

4.5 विलंबित ख़याल किस काल की देन है ?

क) मुगल काल

ख) अंग्रेज़ काल

ग) रामायण काल

घ) वैदिक काल

4.6 ऐसी गायन शैली जिसमे तबला और पखावज के बोलों को गया जाता हो ?

क) ग़ज़ल

ख) तराना

ग) गीत

घ) भजन

4.7 भजन, गीत, ग़ज़ल, कोनसे संगीत की विधा है ?

क) गंभीर

ख) कठोर

ग) सुगम

घ) चंचल

4.4 सारांश

गायन, वादन और नृत्य संगीत के ये तीन अंग हैं, उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में भिन्न भिन्न गायन शैलियों जैसे ध्रुवपद , धमार , होरी , होली , ठुमरी , विलंबित या बड़ा ख़याल , छोटा या द्रुत ख़याल , तराना , भजन , गीत , ग़ज़ल , गायन का तरीका और उसके साथ बजने वाले ताल प्रस्तुतिकरण के लिए तथा शैलिओं के चलन को जानने के लिए इसका अभ्यास शुरू से ही किया जाता है।

इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

4.5 शब्दावली

- लय : गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।
- छोटा ख्याल:गायन के अंतर्गत,राग के समस्त लक्षणों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी गीत रचना, जो स्वरबद्ध, लयबद्ध वतालबद्धहो तथा मध्य या द्रुत लय में गाई जाती हो उसे छोटा ख्याल कहते हैं।

- द्रुत गत : वादन के अंतर्गत,राग के समस्त लक्षणों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी रचना, जो स्वरबद्ध, लयबद्ध वतालबद्धहो तथा मध्य या द्रुत लय में बताई जाती हो उसे द्रुत गत कहते हैं।
- शास्त्रीय संगीत : शास्त्रीय संगीतवह संगीत है जो नियमों से बंधा होता है।

4.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

4.1 उत्तर: क)

4.2 उत्तर: ख)

4.3 उत्तर: ग)

4.4 उत्तर: घ)

4.1 उत्तर: क)

4.2 उत्तर: ख)

4.3 उत्तर: ग)

4.7 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

4.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश संगीत कार्यालय हाथरस 204101 (उ० प्र०)

4.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. ध्रुवपद , धमार , होरी , होली का परिचय और इनमे प्रयुक्त होने वाली ताल लिखिए/बताइए।

प्रश्न 2. ठुमरी , विलंबित या बड़ा ख़याल , छोटा या द्रुत ख़याल का परिचय और इनमे प्रयुक्त होने वाली ताल को लिखकर समझाइये।

प्रश्न 3. तराना , भजन , गीत , ग़ज़ल , का परिचय और इनमे प्रयुक्त होने वाली ताल को लिख कर समझाइये।

इकाई -5
लय और लयकारी
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
5.1	भूमिका
5.2	उद्देश्य तथा परिणाम
5.3	लय और लयकारी की परिभाषा
5.3.1	सीधी लय और टेढ़ि लय की जानकारी
5.3.2	आड़ लय की जानकारी
5.3.3	कुआड़ लय की जानकारी
5.3.4	बिआड़ की जानकारी
	स्वयं जांच अभ्यास1
5.4	सारांश
5.5	शब्दावली
5.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नोंकेउत्तर
5.7	संदर्भ
5.8	अनुशंसित पठन
5.9	पाठगत प्रश्न

5.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह पांचवीं इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, लय और लयकारी को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, वैचित्रतापूर्ण तथा आनंददायक होता है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत के कलाकार लयकारी को अपने मंच प्रदर्शन के समय प्रस्तुत करते हैं। लय और लकारी का, शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में भी प्रयुक्त होता है, जिसके आधार पर कई गतें , परने ,टुकड़े इत्यादि का निर्माण हुआ है तथा हो रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी लय और लयकारी को भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही क्रियात्मक रूप से लयकारी से बने टुकड़े ,परने आदि बजा सकेंगे।

5.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- लय और लयकारी की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- आड़ , कुआड़ , बिआड़ लय को भातखंडे स्वरलिपि में लिखने की क्षमता विकसित करना।
- आड़, कुआड़ ,बिआड़ को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखने के परिणाम

- लय और लयकारी के तकनीकी पहलुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- आड़ ,कुआड़ ,बिआड़ को लिखने की निपुणता प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- आड़ ,कुआड़ ,बिआड़ को बजाने में सक्षम होंगे।
- लय और लयकारी के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

5.3 लय और लयकारी की परिभाषा

-लय-

गाने-बजाने तथा नृत्य की गति अथवा चाल को लय कहते हैं। संगीत संसार में लय बहुत प्रकार की है, बल्कि लय पर पूरी सृष्टि कायम है। अगर लय पर पृथ्वी न रहे तो विनष्ट होने में जरा भी देरी न लगे, क्योंकि पृथ्वी की गति जरा भी बेलय हो जाय तो हो सकता है कि भूचाल आ जाय या दुनियाँ का कोई भाग या पूरा भाग नष्ट हो जाय। संगीत में मोटे तौर से लय के दो प्रकार हैं –

(1) सीधी लय

और

(2) टेढ़ी लय।

-लयकारी-

थोड़ी देर तक एक लय में गाने-बजाने के बाद दुगुन, चौगुन, आड़ की लय दिखाने को लयकारी कहते हैं। इसका अर्थ है, पूर्व स्थापित लय से सबन्धित अन्य लय दिखाना।

5.3.1 सीधी लय और टेढ़ि लय की जानकारी

सीधी लय के अन्तर्गत लय तीन प्रकार की होती है –

(अ) विलम्बित लय

(ब) मध्य लय

(स) द्रुत लय।

विलम्बित लय-

उसे कहते हैं जिसकी चाल बहुत धीमी हो अर्थात् जिसमें एक मात्रा के बाद से दूसरी मात्रा के आने में काफी समय लगे।

मध्य लय-

वह है जो विलम्बित लय से तेज और द्रुत से धीमी हो अर्थात बीच की लय हो।

द्रुत लय-

वह है जिसकी चाल मध्य से तेज हो। लय चाहे जितनी भी तेज हो वह द्रुत लय कहलायेगी।

टेढ़ी लय के अन्तर्गत भी लय के मुख्य तीन प्रकार है –

(अ) आड़

(ब) कुआड़

(स) बिआड़

5.3.2 आड़ लय

आड़ या आड़ी–

यह दोनों समानार्थक हैं। यह लयकारी का एक प्रकार है। आड़ शब्द का अर्थ है वक्र, टेढ़ा या तिरछा और उसी से संगीत में आड़ी शब्द का प्रयोग हुआ है। आड़ी लय अपने में स्वतन्त्र नहीं है। यह दूसरी लय पर आधारित है। चतुर्मात्रिक छन्द को त्रिमात्रिक करने से छन्द वक्र हो जाता है और इसी से आड़ या आड़ी लय बनती है। अतः यह सापेक्ष है, क्योंकि चतुर्मात्रिक छन्द को स्वीकार करने के पश्चात् ही आड़ी छन्द का अस्तित्व होता है। दूसरे शब्दों में एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, दो मात्रा में तीन मात्रा या चार मात्रा में 6 मात्रा करना आड़ी लय है, जिसे अंकों द्वारा हम इस प्रकार लिखेंगे -

1S2 S3S 4S5 S6S

व्यापक अर्थ में किसी वक्र लयकारी को आड़ी लय कहा जा सकता है। अतः इसके अन्तर्गत कुआड़ी, बिआड़ी आदि की लयकारियाँ भी आती हैं। परन्तु विशेष प्रायोगिक अर्थ में डेढ़गुन को ही आड़ या आड़ी लय कहते हैं। सोलह मात्रा में बारह मात्रा करना पौनगुन, तो सोलह मात्रा में चौबीस मात्रा करना डेढ़ गुना या आड़ कहा जाता है।

रूपक ताल में आड़ –

1	2	3	4	5	6	7
ती	ती	SतीS	तीSना	SधीS	नाSधी	SनाS
0			2		3	

तिलवाड़ा ताल की आड़ –

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	Sधाऽ	तिरकिटSधिं	Sधिंऽ
X				**2**			
9	10	11	12	13	14	15	16
धाSधा	Sतिंऽ	तिंSता	Sतिरकिटऽ	धिंSधिं	Sधाऽ	धाSधिं	Sधिंऽ
0				**3**			

कहरवा ताल की आड़ -

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	गे	SSधा	Sगेऽ	नाSति	Sनऽ	कSधि	Sनऽ
X				**0**			

दीपचंदी ताल की आड़ –

1	2	3	4	5	6	7
धा	धिं	S	धा	धाSधिं	SSS	Sधाऽ
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
धाSतिं	SSS	ताSतिं	SSS	Sधाऽ	धाSधिं	SSS
0			**3**			

5.3.3 कुआड़ लय

कुआड़ अथवा कुआड़ी–

इन दोनों शब्दों में कोई अन्तर नहीं है। यह एक विशेष प्रकार की वक्र लयकारी है। इसके विषय में दो मत प्रचलित हैं।

एक- जब एक मात्रा काल में सवा मात्रा किया जाता है।

दो- जब एक मात्रा काल में सवा दो 2 से ¼ किया जाता है, तो उसे कुआड़ या कुआड़ी की लयकारी कहते हैं। इन दोनों मतों को नीचे स्पष्ट किया जा रहा है।

प्रथम मत के अनुसार सवागुन अर्थात् 1 से ¼ या 5/4 गुन की लयकारी को कुआड़ की लयकारी कहते हैं। इसे अंकों द्वारा निम्न प्रकार से लिखेंगे-

S1SSS 2SSS3 SSS4S SS5SS S6SSS

S1SSS 2SSS3 SSS4S SS5SS S6SSS

दूसरे मत के अनुसार आड़ की आड़ अर्थात् सवा दो गुन 2 से ¼ या 9/4 की लयकारी को कुबाड़ की लयकारी कहते हैं। इसे अंकों द्वारा निम्न विधि से लिखेंगे-

1SSS2SSS3 SSS4SSS5S

SS6SSS7SS S8SSS9SSS

दादरा ताल की कुआड़ –

1	2	3	4	5	6
धा	Sधाऽऽऽ	धीऽऽऽना	ऽऽऽधाऽ	ऽऽतीऽऽ	ऽनाऽऽऽ
X			0		

दीपचंदी ताल की कुआड़ –

1	2	3	4	5	6	7
धा	धिं	ऽऽऽऽधा	ऽऽऽधिंऽ	ऽऽऽऽऽ	ऽधाऽऽऽ	धाऽऽऽतिं
X			2			
8	9	10	11	12	13	14
ऽऽऽऽऽ	ऽऽताऽऽ	ऽतिंऽऽऽ	ऽऽऽऽधा	ऽऽऽधाऽ	ऽऽधिंऽऽ	ऽऽऽऽऽ
0			3			

सूल्ताल की कुआड़ –

1	2	3	4	5	6
धा	धा	धाऽऽऽधा	ऽऽऽदिंऽ	ऽऽताऽऽ	ऽकिटऽऽऽ
X		0		2	
. 7	8	9	10		
धाऽऽऽतिट	ऽऽऽकतऽ	ऽऽगदीऽऽ	ऽगनऽऽऽ		
3		0			

5.3.4 बिआड़ लय

बिआड़ की लयकारी–

इसे बिआड़ी भी कहते हैं। यह तिरछी या आड़ की लयकारी का एक विशेष प्रकार है। इस लयकारी के विषय में दो मत प्रचलित हैं

एक मत के अनुसार कुआड़ की आड़ को बिआड़ कहते हैं। अर्थात् 27/8

दो मत के अनुसार पौने दो गुन की लयकारी अर्थात् 7/4 की लयकारी को बिआड़ की लयकारी कहते हैं। दोनों को क्रमशः अंकों द्वारा निम्न रीति से लिखा जायेगा-

ऽ1ऽऽऽऽऽऽऽ 2ऽऽऽऽऽऽऽ 3ऽऽऽऽऽऽऽ 4ऽऽ , ऽऽऽऽऽ 5ऽऽऽऽऽऽऽ 6ऽऽऽऽऽऽऽ 7ऽऽऽऽऽ ,

ऽऽ8ऽऽऽऽऽऽऽऽ9ऽऽऽऽऽऽऽ 10ऽऽऽऽऽऽऽऽ11 , ऽऽऽऽऽऽऽ 12ऽऽऽऽऽऽऽ 13ऽऽऽऽऽऽऽ 14ऽऽऽ ,

ऽऽऽऽ 15ऽऽऽऽऽऽऽ 16ऽऽऽऽऽऽऽ 17ऽऽऽऽऽऽ , ऽ18ऽऽऽऽऽऽऽ 19ऽऽऽऽऽऽऽ 20ऽऽऽऽऽऽऽ 21ऽ ,

ऽऽऽऽऽऽ22ऽऽऽऽऽऽऽ23ऽऽऽऽऽऽऽ24ऽऽऽऽ , ऽऽऽ 25ऽऽऽऽऽऽऽ 26ऽऽऽऽऽऽऽ 27 ऽऽऽऽऽऽऽ

दूसरे मतानुसार-

1ऽऽऽ2ऽऽ ऽ3ऽऽऽ4ऽ

ऽऽ5ऽऽऽ6 ऽऽऽ7ऽऽऽ 1

दादरा ताल की बिआड़ –

1	2	3	4	5	6
धा	**धी**	**SSSSधाSS**	**SधीसSSनाS**	**SSधाSSSती**	**SSSनाSSS**
X			**0**		

सूल्ताल की बिआड़ –

1	2	3	4	5	6
धा	**धा**	**दिं**	**ता**	**SधाSSSधाS**	**SSदिंSSSता**
X		**0**		**2**	
7	8	9	10		
SSSकिटSSS	**धाSSSतिटSS**	**SकतSSSगदी**	**SSSगनSSS**		
3		**0**			

स्वयं जांच अभ्यास 1

5.1 लय कितने प्रकार की होती है?

क) 2

ख) 3

ग) 5

घ) 7

5.2 सीधी लय के कितने प्रकार है?

क) 2

ख) 3

ग) 5

घ) 1

5.3 टेढ़ि लय के कितने प्रकार है?

क) 1

ख) 4

ग) 3

घ) 6

5.4 आड़ि लय किस लय पे आधारित है?

क) अपनी लय पे

ख) दूसरी लय पे

5.5 आड़ का मात्र काल क्या है?

क) 1 में 4

ख) 1 में 2

ग) 1 में 6

घ) 1 में डेढ़

5.6 कुआड़ में कोंसी लयकारी है?

क) सवागुन की

ख) आधगुन

ग) पौणगुन

घ) सवादोगुन

5.7 5/4 की लयकारी को कुआड़ कहते है?

क) हाँ

ख) नहीं

5.8 7/4 की लयकारी को बिआड़ कहते है?

क) नहीं

ख) हाँ

ग) इसमें कोई नहीं

5.9 कुआड़ की आड़ को बिआड़ कहते है।

क) हां

ख) नहीं

5.10 आड़ की आड़ को कुआड़ कहते है।

क) सही

ख) गलत

5.4 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय काफी प्रचलित है। शास्त्रीय संगीत की वादन विधा के अंतर्गत लय और लयकारी को प्रदर्शित किया जाता है। शास्त्रीय संगीत में ताल के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा लय के अभ्यास के लिए लयकारी का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है। लय और लयकारी ताल में रहकर होता है। आड़, कुआड़, और बिआड़, को विलंबित , मध्य तथा द्रुत लय में बजाया जाता है। ताल में लयकारी का अपना महत्व है और लय को विभिन्न प्रकार की लयकारियों के साथ बजाया जाता है।

5.5 शब्दावली

- लय : गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

5.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

5.1 उत्तर: क)

5.2 उत्तर: ख)

5.3 उत्तर: ग)

5.4 उत्तर: ख)

5.5 उत्तर: घ)

5.6 उत्तर: क)

5.7 उत्तर: क)

5.8 उत्तर: ख)

5.9 उत्तर: क)

5.10 उत्तर: क)

5.7 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

श्री विक्रांत शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

5.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

5.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. लय और लयकारी का परिचय लिखिए/बताइए।

प्रश्न 2. आड़ की परिभाषा लिखिए।

प्रश्न 3. कुआड़ की परिभाषा लिखिए।

प्रश्न4. बिआड़ की परिभाषा लिखिए।

प्रश्न 5 . सूलताल की आड़, कुआड़ और बिआड़ लिखकर समझाइये।

प्रश्न 6 . दीपचंदी ताल की आड़, कुआड़ और बिआड़ लिखकर समझाइये ।

प्रश्न 7 . तिलवाड़ा ताल की आड़, कुआड़ और बिआड़ लिखकर समझाइये ।

इकाई -6
तबला के क्षेत्र में विद्वानों का योगदान (वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
6.1	भूमिका
6.2	उद्देश्यतथा परिणाम
6.3	पंडित किशन महाराज का जीवन परिचय
6.3.1	अल्ला रखा खां का जीवन परिचय
6.3.2	जाकिर हुसैन का जीवन परिचय
6.3.3	पंडित सामता प्रसाद का जीवन परिचय
	स्वयं जांच अभ्यास1
6.4	सारांश
6.5	शब्दावली
6.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7	संदर्भ
6.8	अनुशंसित पठन
6.9	पाठगत प्रश्न

6.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातक केक्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह छटी इकाई है। इस इकाई में वादन संगीतके संदर्भ में, पंडित किशन महाराज , अल्लारखा खां , जाकिर हुसैन , पंडित सामता प्रसाद जी का जीवन परिचय विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों और वादन का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, वैचित्रतापूर्ण तथा आनंददायक होता है। विद्वानों द्वारा किये गए प्रयासों से कई तालें बनायी गयी और कुछ मधुर गीतों, भजनों,गजलों में प्रयुक्त ठेकों इत्यादि का निर्माण हुआ है तथा हो रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी पंडित किशन महाराज , अल्लारखा खां , जाकिर हुसैन , पंडित सामता प्रसाद जी का जीवन परिचय को विस्तार पूर्वक समझने और लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- विद्वानों के परिचय की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- संगीत के क्षेत्र में विद्वानों द्वारा किये गए कार्यों की जानकारी प्रदान करना।
- विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकें और उनके शिष्यों के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी वादन के विद्वानों से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- विद्यार्थी गुरु शिष्य परम्परा को जान पायेगा।
- विद्वानों के द्वारा संगीत के क्षेत्र में किये गए कामों को समझने में सक्षम होंगे।

6.3 पंडित किशन महाराज का जीवन परिचय

पंडित किशन महाराज

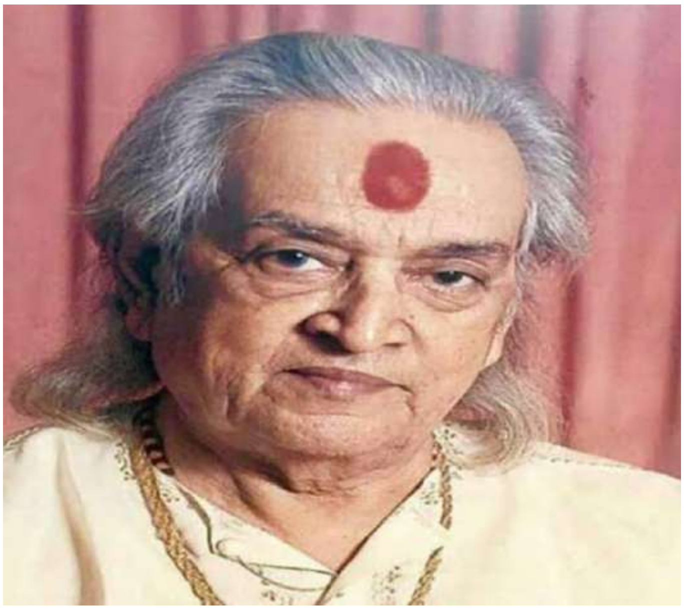

वाराणसी के प्रसिद्ध तबला वादक पं. किशन महाराज का जन्म सन् 1923 में जन्माष्टमी के दिन हुआ था। इसलिये बचपन में आपका नाम कृष्णा रखा गया जो धीरे-धीरे बिगड़ते-बिगड़ते किशन हो गया। आपके पिता पं. हरि प्रसाद आपकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये, अतः आपके चाचा पं. कंठे महाराज ने बड़े लाड़-प्यार से आपका पालन-पोषण किया। जब आप करीब सात वर्ष के थे, तभी से कंठे महाराज ने तबला सिखना शुरू किया। आपकी प्रतिभा उसी समय से झलकने लगी। बचपन से ही आपकी रूचि तैयारी पर न होकर लयकारी और कठिन तालों पर थी। इसलिये आप विषम मात्रा के तालों को बजाने में उतने ही निपुण थे, जितना कि सम मात्रा के तालों को बजाने में। आप ऐसी-ऐसी तिहाइयाँ बजाते थे कि श्रोता दाँतों तले अंगुली दबा लेते थे। आपके लयकारी की दाद प्रत्येक कलाकार देता था। आप जिस किसी के साथ बजाने बैठते थे उसके कार्यक्रम में चार चाँद लगा देते थे। नृत्य के साथ आपकी संगति बेजोड़ होती थी।

आपने प्रत्येक उच्च कलाकार के साथ तबले पर सफल संगति की। सन् 1954 में भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि के साथ विदेशों का भ्रमण किया। तबला के अतिरिक्त आपको शिकार, चित्रकारी, बागबानी, पतंग और ताश खेलने का भी शौक था। हर काम में आप बड़े निपुण थे। आपके तबला सोलो के कई रिकार्ड भी बन चुके हैं। आकाशवाणी के सभी केन्द्रों और अच्छे संगीत-सम्मेलनों में आपने तबला बजाकर ख्याति प्राप्त की। भारत सरकार ने सन् 1973 में आपको पद्मश्री से अलंकृत किया। थोड़ी सी अस्वस्थता के बाद 4 मई 2008 को आपने अपना शरीर त्याग दिया, लेकिन संगीत जगत आपको कभी भी भुला नहीं सकता।

6.3.1 अल्लारखा खां का जीवन परिचय

अल्लारखा खाँ

अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तबला वादक अल्लारखा के नाम से प्रायः सभी तबला-प्रेमी परिचित हैं।

आपका जन्म सन् १६५१ ई० में पंजाब के रतनगढ़ (गुरदासपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम हाशिमअली था, जो खेती- बाड़ी का काम करते थे। वैसे तो बाल्य काल से ही अल्लारखा को संगीत से लगाव था; आयु किंतु पंद्रह-सोलह वर्ष की में आपने पठानकोट की एक नाटक कंपनी में नौकरी कर ली। वहाँ आप उस्ताद कादिरबख्श

के शिष्य खाँ साहब लालमुहम्मद के सम्पर्क में आए और उन्हीं से तबले की शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें अपने चचा के साथ लाहौर जाने का सुयोग प्राप्त हुआ, वहाँ आपने उस्ताद कादिरबख्श से तबले की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की। लाहौर और दिल्ली के आकाशवाणी केन्द्रों से कुछ दिनों तक तबला वादन प्रसारित करने के बाद १९३७ ई० में अल्लारखा बम्बई चले गए। वहाँ भी आपने आकाशवाणी केन्द्र में नौकरी कर ली। चार-पाँच वर्ष के पश्चात् आप फिल्म क्षेत्र के संपर्क में आ गए और कुछ फिल्मों में संगीत-निर्देशन का कार्य भी किया।

अल्लारखा खाँ का तबला वादन पंजाब-घराने की विशेषताओं से ओत-प्रोत है। बेमिसाल तैयारी और सफाई आपकी वादन- शैली के विशेष गुण हैं। तंत्रकार तथा गायकों की संगति करने में आपको विशेष महत्त्व प्राप्त है। आपके सुपुत्र जाकिरहुसैन खाँ ने भी तबला वादन के क्षेत्र में बहुत यश प्राप्त किया है।

6.3.2 ज़ाकिर हुसैन का जीवन परिचय

ज़ाकिर हुसैन

ज़ाकिर हुसैन भारत के प्रसिद्ध तबला वादक हैं। वे मशहूर तबला वादक क़ुरैशी अल्ला रक्खा ख़ान के पुत्र हैं। अल्ला रक्खा ख़ान भी तबला बजाने में माहिर माने जाते थे। ज़ाकिर हुसैन जब अपनी उंगलियों और हाथ की थाप से तबला बजाते हैं तो संसार को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। उनके तबले के सुर को सुन लोग मदहोश हो जाते हैं और कहते हैं 'वाह उस्ताद'। ज़ाकिर हुसैन ने देश ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में अपनी कला का परचम लहराया है।

जीवन में इतनी प्रसिद्धि पाने के बाद भी उस्ताद को सादगी से रहना पसंद है और वह अक्सर जमीन से जुड़े रहते हैं। उन्होंने अपने जीवन में कई संघर्षों के बाद यह मुकाम पाया है। भारत सरकार द्वारा उन्हें पद्म विभूषण, पद्म भूषण तथा पद्म श्री से सम्मानित किया जा चुका है।

ज़ाकिर हुसैन का बचपन मुंबई में ही बीता। 12 साल की उम्र से ही ज़ाकिर हुसैन ने संगीत की दुनिया में अपने तबले की आवाज़ को बिखेरना शुरू कर दिया था। प्रारंभिक शिक्षा और कॉलेज के बाद ज़ाकिर हुसैन ने कला के क्षेत्र में अपने आप को स्थापित करना शुरू कर दिया। 1973 में उनका पहला एलबम 'लिविंग इन द मैटेरियल वर्ल्ड' आया था। उसके बाद तो जैसे ज़ाकिर हुसैन ने ठान लिया कि अपने तबले की आवाज़ को दुनिया भर में बिखेरेंगे। 1973 से लेकर 2007 तक ज़ाकिर हुसैन विभिन्न अंतरराष्ट्रीय समारोहों और एलबमों में अपने तबले का दम दिखाते रहे। वह भारत में तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं ही, साथ ही विश्व के विभिन्न हिस्सों में भी समान रूप से लोकप्रिय हैं। ज़ाकिर हुसैन अक्सर कहा करते हैं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत स्टेडियम के लिए नहीं है, बल्कि यह कमरे का संगीत है। शायद ऐसा कोई ही देश बचा हो, जहां ज़ाकिर हुसैन ने अपना शो नहीं किया और जनता को अपनी कला का दीवाना ना बनाया हो। वर्ष 1978 में ज़ाकिर हुसैन ने कथक नृत्यांगना एंटोनिया मिनीकोला से शादी की। वह इटैलियन थीं और उनकी मैनेजर भी। उनकी दो बेटियां हैं- अनीसा कुरैशी और इसाबेला कुरैशी। ज़ाकिर हुसैन बिल लाउसवैस के ग्लोबल म्यूजिक सुपरग्रुप 'तबला बीट साइंस' के संस्थापक सदस्य भी हैं।

सम्मान और पुरस्कार

1988 में जब उन्हें पद्म श्री का पुरस्कार मिला था तब वह महज 37 वर्ष के थे और इस उम्र में यह पुरस्कार पाने वाले सबसे कम उम्र के व्यक्ति भी थे। इसी तरह 2002 में संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें पद्म भूषण का पुरस्कार दिया गया था। वर्ष 2023 में उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया है।

वह पहले भारतीय हैं, जिन्हें ऑल-स्टार ग्लोबल कॉन्सर्ट में भाग लेने के लिए पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की ओर से व्हाइट हाउस में आमंत्रित किया गया। उन्हें कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया जा चुका है। वहीं, संगीत की दुनिया का सबसे बड़ा ग्रैमी अवॉर्ड उन्हें दो बार, साल 1992 में 'द प्लेनेट ड्रम' और 2009 में 'ग्लोबल ड्रम प्रोजेक्ट' के लिए मिल चुका है। ज़ाकिर हुसैन को तबला बजाने में तो दिलचस्पी थी ही, उन्हें एक्टिंग का भी शौक था। 1983 में ज़ाकिर हुसैन ने फिल्म 'हीट एंड डस्ट' से एक्टिंग में डेब्यू किया। इसके बाद 1988 में 'द परफेक्ट मर्डर', 1992 में 'मिस बैटीज चिल्डर्स' और 1998 में 'साज' फिल्म में भी उन्होंने एक्टिंग में अपना हाथ आजमाया।

6.3.3 पंडित सामता प्रसाद का जीवन परिचय

पंडित सामता प्रसाद

वर्तमान तबला वादकों में वाराणसी के पं. सामता प्रसाद का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इसका कारण यह है कि आप जिस संगीतज्ञ के साथ संगति करने बैठते थे, उसके कार्यक्रम में चार चाँद लगा देते थे। तैयारी में तो आपने उच्चतम शिखर को प्राप्त कर लिया था। कु० रोशन ऐसी तैयार नृत्यांगना के साथ संगति के लिये सबकी निगाह आप पर ही जाती थी। आप देवी के अनन्य भक्त थे और प्रत्येक कार्यक्रम के पूर्व सफल प्रदर्शन के लिये देवी से प्रार्थना करते थे। इतने प्रसिद्ध होने के बावजूद आपमें तनिक भी अभिमान और कला के प्रति संतोष नहीं था। आप हमेशा यही कहा करते थे कि जो कुछ मेरे पास है वह सब देवी का प्रसाद है। अभी तो मुझे बहुत कुछ करना है। आप नित्य प्रति अभ्यास करते थे और जिस दिन किसी कारणवश अभ्यास करने में बाधा आती थी तो आपका मन खिन्न हो जाता था। किसी कार्यक्रम में रंगमंच पर आने के पूर्व आप अपने आपको अनेक प्रकार से सुसज्जित करते थे। आप पान और इत्र के बड़े प्रेमी थे।

आपका जन्म सन् 1920 में वाराणसी के कबीरचौरा नामक मोहल्ले में हुआ। आपके पिता बाचा मिश्र एक कुशल तबला वादक थे, किन्तु उनकी मृत्यु आपकी बालवस्था में हो गई, अतः आपको अपने पिता से

केवल प्रारम्भिक शिक्षा मिली। उसके बाद आपने पं. बलदेव सहाय के शिष्य पं. बिक्कू जी मिश्र से तबला वादन सीखा। आप प्रारम्भ से ही बड़े परिश्रमी थे, इसलिये शीघ्र ही एक कुशल तबला-वादक हो गये। आप संगीत-जगत् में गुदई महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे। भारत सरकार ने आपको सन् 1972 में पद्मश्री के सम्मान से विभूषित किया। आपने अपने तबला वादन से विदेशों में भारत का मस्तक ऊँचा किया। मई 94 के अंतिम सप्ताह में एक कार्यक्रम के सिलसिले में आप पूना गये थे। वहाँ एकाएक आपकी तबियत खराब हो गई और उचित डॉक्टरी उपचार मिलने के पूर्व ही आपने इस संसार को छोड़ दिया। यह दुखद समाचार संगीत-जगत में जंगल की अग्नि के समान फैल गई। सुनते ही रसिक जनों के आँसू बहने लगे, लेकिन ईश्वर के आगे किसकी चलती है। उनका पार्थिव शरीर वाराणसी लाया गया और 1 जून 1994 को उनका अन्तिम संस्कार वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर किया गया।

स्वयं जांच अभ्यास 1

6.1 पं०किशन महाराज जी का जन्म कहाँ हुआ ?

क) वाराणसी

ख) दिल्ली

ग) शिमला

घ) लखनऊ

6.2 अल्ला रखा खां जी का जन्म साल क्या है ?

क) 1770

ख) 1919

ग) 1890

घ) 2003

6.3 जाकिर हुसैन जी का जन्म कहाँ पर हुआ?

क) शोघी

ख) रामनगर

ग) मुंबई

घ) तिर्मिली

6.4 9 मार्च 1951 में किसका जन्म हुआ ?

क) अल्लारखा खां

ख) सुधीर पांडे

ग) पं. विष्णुदिगम्बरपलुष्कर

घ) जाकिर हुसैन

6.5 पंडित किशन महाराज जी का जन्म कोनसे साल में हुआ ?

क)1923

ख) 1234

ग) 1789

घ) 1253

6.6 कितने वर्ष की आयु में जाकिर हुसैन जी को पद्म श्री मिला ?

क) 12

ख) 37

ग) 50

घ) 20

6.7 जाकिर हुसैन के गुरु कोन थे ?

क) अकबर

ख) किशन महाराज

ग) अल्लारखा खां

घ) कंठे महाराज

6.8 पंडित सामता प्रसाद जी कोनसे घराने से सम्बन्ध रखते थे ?

क) दिल्ली

ख) पंजाब

ग) फरुखाबाद

घ) बनारस

6.9 पंडित किशन महाराज जी के गुरु कोण थे ?

क) मोदू खां

ख) कंठे महाराज

6.10 पंडित किशन महाराज जी के शिष्यों में डॉ. राजीव शर्मा हुए ?

क)सही

ख) गलत

6.4 सारांश

संगीत में पंडित किशन महाराज , अल्लारखा खां , जाकिर हुसैन , पंडित सामता प्रसाद जी का जीवन परिचय विस्तार पूर्वक परिचय और उनके द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिया गया योगदान। विद्वानों द्वारा की गयी उप्लभ्धि और उनके शिष्यों ने गुरु शिष्य परम्परा को आगे बढाने में किये गए प्रयास ।

6.5 शब्दावली

- विद्याध्यन : विद्या का अध्यन करने वाला
- शाश्त्रार्थ : शाश्त्रों के बारे में बात करना
- कीर्तनकार : भजन कीर्तन करने वाला
- लय : गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय : वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

6.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

6.1 उत्तर: क)

6.2 उत्तर: ख)

6.3 उत्तर: ग)

6.4 उत्तर: घ)

6.5 उत्तर: क)

6.6 उत्तर: ख)

6.7 उत्तर: ग)

6.8 उत्तर: घ)

6.9 उत्तर: ख)

6.10 उत्तर: क)

6.7 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

6.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

6.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. पंडित किशन महाराज जी का जीवन परिचय लिखिए ?

प्रश्न 2. पंडित सामता प्रसाद जी का जीवन परिचय लिखिए ?

प्रश्न 3. अल्ला रखा खां जी का जीवन परिचय लिखिए ?

प्रश्न 4. जाकिर हुसैन जी का जीवन परिचय लिखिए ?

इकाई -7
तबला में स्वतन्त्र वादन
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
7.1	भूमिका
7.2	उद्देश्यतथा परिणाम
7.3	तबला स्वतन्त्र वाद्य या संगति
7.3.1	स्वतन्त्र वादन है क्या
7.3.2	स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करने की पद्धति
7.3.3	वादन किस लय में शुरू हो
7.3.4	एकल वादन को कैसे लोकप्रिय बनाया जाए
	स्वयं जांच अभ्यास1
7.4	सारांश
7.5	शब्दावली
7.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.7	संदर्भ
7.8	अनुशंसित पठन
7.9	पाठगत प्रश्न

7.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह सातवीं इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, तबला में स्वतन्त्र वादन को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला में स्वतन्त्र वादन का प्रयोग विशेष रूप से होता है।

इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी तबला वादन के संदर्भ में स्वतन्त्र वादन की मूलभूत तकनीककी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से तबला में स्वतंत्र वादन कर सकेगें।

7.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- स्वतन्त्र वादन की जानकारी प्रदान करना।
- तबला में स्वतन्त्र वादन को जानने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।
- विद्यार्थी को स्वतन्त्र वादन के नियमों से परिचित करवाना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,तबला वादन के संदर्भ में तबला में स्वतन्त्र वादन की मूलभूत तकनीक के विषय में जान पाएगा।
- स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करने और नियमों की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- विद्यार्थी में, वादन के संदर्भ में स्वतन्त्र वादन के बारे में अपनी कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।

7.3 तबला स्वतन्त्र वाद्य या संगति

तबला स्वतन्त्र वाद्य है या संगति ? यह विवाद बहुत दिनों से चल रहा है। तबले के विषय में किए गए अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि इसमें समय-समय पर जो ऐतिहासिक महत्त्व के परिवर्तन हुए हैं, वह संगति की दृष्टि से ही हुए लेकिन, इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि तबला मात्र संगति वाद्य है। स्वतन्त्र वादन की दृष्टि से देखा जाए तो तबला इसकी कसौटियों पर बिलकुल खरा उतरता है। इसका क्षेत्र इतना विशाल और विस्तृत है कि इसमें घण्टों स्वतन्त्र वादन किया जा सकता है। और लगभग सभी अच्छे कलाकार आज संगति के साथ-साथ स्वतन्त्र वादन को भी महत्त्व देने लगे हैं। न केवल स्तरीय संगीत समारोहों के प्रतिष्ठित मंचों बल्कि आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा भी तबला स्वतन्त्र वादन के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। एकल तबला वादन के कैसेट और डिस्क भी खूब लोकप्रिय हैं। स्व. कण्ठे महाराज, ,उस्ताद अमीर हुसैन खाँ, उस्ताद अहमद जान थिरकवा, तबला शिरोमणि गामा महाराज, पं. अनोखे लाल, पं. सामता प्रसाद, उस्ताद अल्लारखा, पं. किशन महाराज, उस्ताद लतीफ अहमद जैसे दिवंगत कलाकारों के मुक्त तबला वादन के कार्यक्रम यादगार होते थे। आज के वर्तमान कलाकारों में प्रो. रंगनाथ मिश्र और उस्ताद जाकिर हुसैन, पंडित कुमार बोस, शुभ महाराज, आदि के स्वतन्त्र तबला वादन काफी लोकप्रिय हैं। इनके अलावा भी कई ऐसे कलाकार हैं जो सफलतापूर्वक मुक्त वादन करते हैं। जैसे नयन घोष, मुकुंद भाले, सुरेश तलवलकर, डॉ. राजीव शर्मा और शीतल प्रसाद मिश्र आदि।

7.3.1 स्वतन्त्र वादन है क्या

जब तबला वादक दूसरे विधा के किसी कलाकार की संगति न करके स्वतन्त्र रूप से अपना वादन प्रस्तुत करता है, तब उसके वादन को स्वतन्त्र वादन, मुक्त वादन, एकल वादन और सोलो (SOLO) जैसे नाम दिए जाते हैं। इसके अन्तर्गत तबला वादक अपने अच्छे और महत्त्वपूर्ण बोलों का वादन करके अपनी स्तरीयता का परिचय देता है। चूँकि, एकल वादन के समय वह किसी का अनुगामी न होकर अपना वादन अपनी इच्छानुसार प्रस्तुत करने के लिए पूरी तरह स्वतन्त्र होता है। अतः अपने विशिष्ट बोलों पर प्रकाश डालते हुए, उनकी पढ़न्त और व्याख्या करते हुए भी प्रस्तुत करता है वह। लेकिन, यह सब वह अपनी इच्छा और विवेक के अनुसार करता है। हारमोनियम, सारंगी या वायलिन जैसे किसी वाद्य पर इस दौरान लहरा (नग्मा) बजता है, जिससे लोगों को ताल और लय की स्थिति का पता चलता रहता है।

7.3.2 स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करने की पद्धति

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, स्वतन्त्र वादन के समय कलाकार अपना वादन प्रस्तुत करने के लिए पूरी तरह स्वतन्त्र होता है। लेकिन, नियमों, अनुशासनों का अपना और विशेष महत्त्व होता है। उसके दायरे से ऊपर कोई नहीं होता। तबला के विद्वानों ने तबला एकल वादन प्रस्तुत करने की विधि निश्चित की है। संगीतार्थियों की सुविधा हेतु एकल तबला वादन की विधि निम्न पंक्तियों में दी जा रही है-

वादन प्रस्तुत करने के पूर्व ताल का चयन किया जाता है। दूसरे कलाकारों के साथ संगतिकार के रूप में तबला वादन के समय यह जिम्मेदारी तबला वादक की होती है। उस समय जब तबला वादक अपनी रचना प्रस्तुत करता है, तब ताल और लय की बागडोर मुख्य कलाकार सम्भाल लेता है। किन्तु एकल तबला वादन में चूँकि ताबलिक ही आरम्भ से अन्त तक अपनी रचना प्रस्तुत करता है, अतः उसे एक ऐसे सहयोगी, संगतिकार की जरूरत पड़ती है जो अपने वाद्य पर उस ताल का लहरा (नगमा) प्रस्तुत करते हुए उस तबला वादक को ताल की स्थिति से भी परिचित कराए, और लय का आधार भी प्रदान करे। यह सहयोगी कलाकार हारमोनियम, सारंगी या

वायलिन जैसे वाद्य पर उस ताल का लहरा बजाता है। इसलिए तबला वादक को केवल लय-ताल की ही नहीं, स्वर की भी इतनी जानकारी होनी चाहिए कि उसके उतार-चढ़ाव से वह ताल की ताली, खाली और मात्राओं, विभागों को भली-भाँति समझ सके।

7.3.3 वादन किस लय में शुरू हो

वादन किस लय में शुरू हो ? यह एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय है। चूँकि, एकल तबला वादन का विशेष महत्त्व होता है, और गम्भीर विद्वान भी इसे पूरा महत्त्व देते हैं, अतः इसकी प्रस्तुतिकरण पूरी गम्भीरता से होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वादन विलम्बित लय से आरम्भ किया जाए, और मध्य तथा द्रुत लय से होते हुए अति द्रुत लय में इसे समापन की ओर मोड़ा जाए। तबला वादक के लिए उचित है कि वह लयों का क्रमिक विकास करते हुए प्रत्येक लय में कुछ देर वादन करे। विलंबित के बाद एकदम से द्रुत लय का वादन अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार अगर मध्य लय में ही वादन समाप्त कर दिया जाए तब भी श्रोताओं पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता। इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि लय का विकास विलम्बित से द्रुत की ओर हो, और हर लय में कुछ देर तक स्थिरतापूर्वक वादन किया जाए।

एक और बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक बार लय बढ़ा देने के बाद उसे कम नहीं करना चाहिए। कभी-कभी देखने में आता है कि लय बढ़ जाने के बाद जब कलाकार को कोई कम लय का बोल याद आ जाता है, या द्रुत लय में कोई बोल बजाने में कलाकार को असुविधा होने लगती है, तब कलाकार लय कम कर देते हैं। यह उचित नहीं है।

लय कायम हो जाने के बाद बोलों का वादन आरम्भ होता है। एकल वादन के द्वारा ही चूँकि तबला वादक अपनी विद्वता प्रकट करता है, अतः उसे ऐसे बोलों का वादन करना चाहिए, जो सामान्य से अच्छे स्तर के हों, और जिनका श्रोताओं पर विशेष प्रभाव पड़ सके। तरह-तरह के टुकड़े, परण, फरमाइशी, कमाली, गत, फर्द आदि अनेक ऐसे बोल हैं, जो विद्वानों के कोष में सुरक्षित हैं। एकल वादन में ऐसे ही बोलों की प्रस्तुति की जाती है। ताकि श्रोता इस वाद्य और इसके वादक की क्षमताओं का आकलन कर सकें।

एकल वादन में बोलों को क्रमानुसार प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा नहीं कि मात्र गत, फर्द से शुरू कर दे विशिष्ट बोलों को प्रस्तुत करना है, सोचकर वादक सीधे दिल्ली आदि घरानों के कलाकार वादन का आरम्भ

पेशकार से करते हैं, जबकि बनारस घराने के कलाकार उठान से। फिर कायदे, बाँट आदि बजाए जाते हैं। फिर लय बढ़ाकर टुकड़े, परण आदि बजाए जाते हैं। अन्त में द्रुत लय कायम करके उसमें एक रेला बाँधकर गतों के विभिन्न प्रकारों एवं फर्द आदि का वादन करके अति द्रुत लय में वादन का समापन किया जाता है।

एकल वादन करते समय बोलों के चुनाव और सजावट पर भी ध्यान देना चाहिए। कम प्रभाव वाले बोलों को पहले और अधिक प्रभाव वाले बोलों को बाद में प्रस्तुत करना चाहिए। क्योंकि अधिक प्रभावशाली बोलों के बाद कम प्रभाव वाले बोलों को प्रस्तुत करने से वे अपना अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में असफल रहते हैं।

7.3.4 एकल वादन को कैसे लोकप्रिय बनाया जाए

अन्य कलाओं की अपेक्षा तबला एकल वादन का आनन्द लेने वालों की संख्या आज भी कम ही है। इसका कारण यह है कि इसमें न तो नृत्य की तरह मुद्राओं एवं अभिनय का प्रयोग होता है, और न तो गायन के समान शब्दों, पदावलियों और साहित्य का। अतः संगीत के सामान्य श्रोता जो संगीत की बारीकियाँ नहीं समझते, इसका भरपूर आनन्द नहीं उठा पाते हैं। जबकि किसी चीज की लोकप्रियता के लिए यह बहुत जरूरी है कि जन साधारण भी उसमें पूरी रुचि ले। तबला के साथ भी लगभग यही बात है।

तबला जानने वाले इस तथ्य से परिचित हैं कि यह केवल ठेका बजाने वाला वाद्य नहीं है। ताल वाद्यों में चूँकि यह सर्वाधिक क्षमतावान है, अतः इसकी क्षमताओं का प्रदर्शन, उससे लोगों को परिचित कराया जाना कलाकारों का सांस्कृतिक कर्त्तव्य है। लेकिन, परिचित कैसे कराया जाए ? चूँकि, तबला का साहित्य पक्ष बहुत समृद्ध नहीं है। अतः सामान्य श्रोता इसकी गूढ़ता से अपरिचित होते हैं। इसलिए ताबलिक को चाहिए कि जब सामान्य श्रोताओं के बीच वादन करे, तो बोलों का संक्षिप्त परिचय भी देते चलें। परिचय देते समय इस बात का भी ध्यान रहे कि परिचय भाषण में बदलकर बोझिल न हो जाए। इसलिए रोचक और सरल शब्दावलियों का संक्षिप्त रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

एकल वादन की लोकप्रियता के लिए यह जरूरी है कि इसका आकर्षण समाप्त न हो, इसलिए कलाकार को यह ध्यान भी रखना चाहिए कि उनका कार्यक्रम बहुत लम्बा न हो। क्योंकि अधिक देर तक चलने वाला कार्यक्रम श्रोताओं में ऊब पैदा कर देता है। अतः कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक प्रकार के बोलों का वादन करके अपना कार्यक्रम उस वक्त ही समाप्त कर देना चाहिए, जब श्रोता अभी और अधिक सुनने के इच्छुक

हों। इससे जब उनके मन में एकल वादन को और सुनने की इच्छा शेष रहेगी तभी वे पुनः सभागार तक आएँगे। वरना पहली बार में ही अगर श्रोताओं का मन भर गया तो वे पुनः उस कलाकार को सुनने के लिए प्रेक्षागृह तक नहीं आएँगे। अतः आकर्षण बनाए रखना चाहिए।

कार्यक्रम को शुरू से अन्त तक रोचक और आकर्षक बनाए रखने हेतु यह आवश्यक है कि कलाकार के वादन में विविधता हो। उसे पुनरावृत्ति से बचने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए, और चाहिए कि हर बार नए पल्टों, नए प्रकार के बोलों का वादन करे। इससे लोगों को एकरसता का बोध नहीं होगा। कार्यक्रम की रोचकता बनाए रखने हेतु केवल गम्भीर किस्म के बोलों की ही नहीं, ऐसे बोलों की भी प्रस्तुति करनी चाहिए जो सरस और कर्णप्रिय हों। इसके लिए कठिन रियाज़ द्वारा वादक को बोलों में तैयारी और सफाई लानी चाहिए। दाएँ-बाएँ के ध्वनि सन्तुलन और बोलों के वजन पर भी ध्यान देना चाहिए।

अलग-अलग अन्दाज के अलग-अलग बोल बजने से भी श्रोताओं को एकरसता का अनुभव नहीं होता। पेशकार, कायदा, बाँट और रेला आदि के वादन के समय अगर एक से दूसरे बोल के बीच कभी मुखड़े, कभी टुकड़े, परण कभी तिहाइयों और कभी चक्रदार आदि का वादन किया जाए तो माहौल बदल जाता है। और, इस तरह अपने वादन को उस चरमोत्कर्ष पर ले जाकर समाप्त करना चाहिए, जहाँ आनन्द की पराकाष्ठा हो, और श्रोता पूरी तरह आनन्द में डूबे हों। इस दृष्टि से देखा जाए तो मुक्त वादन संगति से अधिक कठिन है। क्योंकि संगति में वादक मुख्य कलाकार के साथ मात्र ठेका और बीच-बीच में कुछ छोटे-छोटे मुखड़े, मोहरे और तिहाइयाँ बजाकर भी काम चला सकता है। किन्तु मुक्त वादन की प्रस्तुति जैसे-तैसे नहीं होती। इसमे काम चलने वाली स्थिति से काम नहीं बनता। इसलिए, आज भी ऐसे कई तबला वादक हैं, जो गायन-वादन की संगति तो बहुत अच्छी करते हैं, किन्तु एकल वादन नहीं प्रस्तुत करते। इसका कारण है भरपूर रियाज़ की कमी और पूरी शिक्षा का अभाव, सफल स्वतन्त्र वादन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट बोलों की पूर्ण जानकारी और तबले पर उन्हें पूरी सफलता के साथ प्रस्तुत करने की क्षमता का होना परम आवश्यक है। क्योंकि यहाँ केवल ठेका लगाने से काम नहीं चलने वाला।

लेकिन, केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। मुक्त तबला वादन को लोकप्रिय बनाने के लिए कई स्तरों पर प्रयास करना होगा। इसका पूरा आनन्द लेने के लिए यह आवश्यक है कि श्रोता इसकी विशेषताओं को समझें, और यह तभी सम्भव है , जब संगीत शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो 4/5, 4/6, 4/7, 3/4, 4/3 की लयकारियों का, फरमाइशी और कमाली परणों के भिन्न-भिन्न 'धा' का, या लोम-विलोम अथवा भिन्न-भिन्न यतियों और जातियों के बोलों का पूरा-पूरा रसास्वादन श्रोता तभी कर पाएँगे, जब इसकी विशेषताओं से वे परिचित होंगे। जब वे यह समझेंगे कि 4/5 और 5/4 की लयकारी में क्या भेद है, तभी इसके लय चमत्कार का आनन्द उठा पाएँगे। इसलिए, सांगीतिक शिक्षा का प्रचार - प्रसार इस दिशा में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकता है।

इसके अलावा भिन्न-भिन्न स्तरों पर सांगीतिक कार्यक्रमों का आयोजन करने वाले आयोजकों को भी चाहिए कि वे संगीत समारोहों में एकल तबला वादन का भी अवश्य समावेश करें। लगातार सुनने से भी श्रोताओं को उसमें आनन्द आने लगता है, और वे इसके अभ्यस्त हो जाते हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन भी इस दिशा में काफी कुछ कर सकते हैं। 15-30 मिनट के एकल वादन के कार्यक्रम वे प्रसारित कर सकते हैं। और, इन सबके संयुक्त प्रभाव के तबला वादन के एकल कार्यक्रमों की लोकप्रियता का स्तर निश्चित ही विकसित होगा।

स्वयं जांच अभ्यास 1

7.1 तबला स्वतन्त्र वाद्य है या संगती ?

क) दोनों अलग अलग

ख) दक्षिण है

ग) एक ही है

7.2 हारमोनियम, सारंगी या वायलिन पर लहरा (नग्मा) बजाया जाता है?

क) गलत

ख) सही

7.3 स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करने के पूर्व ताल का चयन किया जाता है?

क) सही

ख) गलत

7.4 स्वतन्त्र वादन किसी भी लय में शुरू किया जाता है?

क) सही

ख) गलत

7.5 चाला या पेशकार विलंबित लय में होता है?

क) सही

ख) गलत

7.6 स्वतन्त्र वादन किस वाद्य पे होता है?

क) सारंगी

ख) पखावज

ग) तबला

घ) उपरोक्त सभी

7.4 सारांश

स्वतन्त्र वादन में किसी ताल में प्रयुक्त होने वाले बोलों को बजाने के तरीके की पहचान होना। इससे ताल -ज्ञान के साथ-साथ बोलों के स्वरुप को जानने में वृद्धि होती है। तबला में स्वतन्त्र या एकल वादन के नियमों की जानकारी होना। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा बोलों का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है।

7.5 शब्दावली

- लय: गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को ‘लय’ कहा जाता है।
- विलंबित लय:वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।

- द्रुत लय:वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

7.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

7.1 उत्तर: क)

7.2 उत्तर: ख)

7.3 उत्तर: क)

7.4 उत्तर: ख)

7.5 उत्तर: क)

7.6 उत्तर: घ)

7.7 संदर्भ

डॉ.केशव शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, मार्च 2024।

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

शर्मा, डॉ. मृत्युंजय. (2008). तंत्रिका विज्ञान,एस.आर.ई.आई.टी. पब्लिकेशन, शिमला।

7.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

7.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. तबला स्वतन्त्र वाद्य है या संगति विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न 2. तबला में स्वतन्त्र वादन क्या है ?

प्रश्न 3. स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करने की पद्धति को लिखिए ?

प्रश्न 4. स्वतन्त्र वादन किस लय में शुरू किया जाता है विस्तार से लिखिए ?

इकाई - 8
तबला संगत
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
8.1	भूमिका
8.2	उद्देश्य तथा परिणाम
8.3	संगत का परिचय
8.3.1	शास्त्रीय संगीत (कंठ संगीत) के साथ तबला संगत
8.3.2	लोक तथा सुगम संगीत के साथ तबला संगत
8.3.3	वाद्यों के साथ तबला संगत
8.3.4	नृत्य के साथ तबला संगत
	स्वयं जांच अभ्यास1
8.4	सारांश
8.5	शब्दावली
8.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7	संदर्भ
8.8	अनुशंसित पठन
8.9	पाठगत प्रश्न

8.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातक केक्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह आठवीं इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, तबला संगत को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, वैचित्रतापूर्ण तथा आनंददायक होता है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत के कलाकार विलंबित ख्याल के साथ ½ और ¼ को अपने मंच प्रदर्शन के समय प्रस्तुत करते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी तबला संगत के स्वरूप के साथ-साथ उसके बजाने के तरीके को भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही क्रियात्मक रूप से तबला संगत कर सकेंगे।

8.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- तबला संगत के स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- तबला संगत को जानने की क्षमता विकसित करना ।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखनेकेपरिणाम

- विद्यार्थी वादन के तकनीकी पहलुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- तबला संगत में निपुणता प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

- तबला से संगत करने में सक्षम होंगे।
- तबला संगत के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

8.3 संगत का परिचय

"संगत" इस शब्द का अर्थ स्पष्ट है कि किसी के साथ उसके अनुसार जाना या चलना। संगीत में संगत का अर्थ होता है किसी गायक, वादक या नर्तक के चलन, लय, ताल एवं संगीत के प्रकृति के अनुसार वादन करना। वह वादन चाहे तालवाद्य सेहो अथवा तत् या सुषिर वाद्य से ही क्यों न हो। प्रायः गायक तथा नर्तक के साथ ताल (अवनद्ध) वाद्य एवं तत् या सुषिर वाद्य से उनके स्वर, गीत प्रकार, नृत्य प्रकार, गीत प्रकृति-नृत्य प्रकृति, ताल एवं लय के अनुसार संगत की जाती है। तत् तथा सुषिर वाद्यो के साथ ताल वाद्य से संगत की जाती है। ताल वाद्य के सातत् या सुषिर वाद्य से संगत की जाती है। नृत्य में प्रायः अवनद्ध तथा घन दोनों प्रकार के वाद्यों से लय धारणा की जाती है। दक्षिण भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्य, घन वाद्य तथा तालक द्वारा हाथ की सशब्द और निःशब्द किया से गायन, वादन और नृत्य में लय धारणा के लिये संगत की जाती है।

संगीत में लय एवं ताल का अत्यंत महत्व होता है। ऐसा कहा गया है कि तालविहीन संगीत "आरण्यक संगीत" होता है। नाट्यशास्त्र में ताल की व्याख्या करते हुए भरतमुनी ने कहा है 'कलापातलयान्वितम्'। सशब्द और निशब्द क्रिया से, गीत, वाद्य और नृत्य का (काल एवं गीत) परिमाण धारण कराने वाला काल ही ताल है। ताल एवं लय धारणा से संगीत निवद्ध होकर रंजक होता है, उसकी रंजकता स्थाई बनती है, संगीत प्रभावी होता है, संयम से रसनिष्पत्ति होती है, भाव एवं रस का आनन्द प्राप्तहोता है, सौन्दर्य पूर्ण चलन एवं गति भेद से संगीत अधिक मनोरंजक होता। इसी कारण अति-प्राचीन काल से वर्तमान काल तक संगीत के साथ ताल-वाद्य की संगत आवश्यक मानी गई है। लय एवं ताल में बद्ध संगीत को निबद्ध संगीत कहा जाता है।

तबला वाद्य अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में आता है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक कई अवनद्ध वाद्य प्रचार में आये। सामाजिक अनुकूलता के अनुसार उनका प्रयोग संगीत में संगत के लिये होता रहा। अति प्राचीन काल में भूमि दुंदुभी - दुंदभी समान वाद्यों की संगत लयधारणा के लिये की जाती थी।

तत् पश्चात् मृदंगादि वाद्य प्रचार में आये तथा उनका उपयोग संगीत में लयधारणा के साथ-साथ संगीत को मनोरंजक बनाने के लिए किया जाने लगा। प्राचीन काल में संगीत में ताल की धारणा "ताल" नामक घन वाद्य से की जाती थी। सशब्द और निशब्द क्रिया को ताली एवं खाली से ताल को दर्शाने का कार्य "तालक" (ताल देने वाला) किया करता था। अवनद्ध वादक तो ताल मात्राओं के आधार पर लघु-गुरू आदि वर्णाक्षरों से वादन कर संगीत में रस-भाव और रंजकत्व बढ़ाने का कार्य मात्र करते थे। भरत काल में (3-री 4 थी सदी) सर्वप्रथम तालों का उल्लेख "नाटयशास्त्र" ग्रंथ में उपलब्ध होता है।

भरत ने अपने समय के संगीत के लिये उपयुक्त पुष्कर (त्रिपुष्कर-अलिंग्य, आंकिक, उर्ध्वक) नामक अवनद्ध वाद्य का विस्तृत विवेचन अपने ग्रंथ में किया है तथापि तालों के निश्चित पाटाक्षरों (ठेकों) के अनुसार वादन का कोई उल्लेख नहीं है।

मध्यकाल के सर्वश्रेष्ठ संगीत ग्रंथ "संगीत रत्नाकर" में शारंगदेव ने (13 वी सदी) समयानुकूल भरत के मार्गी तथा प्रचलित देशी तालों का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने मर्दल को ही मृदंग के समान मानकर मर्दल एवं पटह के वादन-विधि का विस्तृत विवेचन किया है। इन्होंने भी ताल के निश्चित पाटाक्षर (ठेके) नहीं बताये। भरत काल से शारंगदेव के काल तक अवनद्ध-वाद्य वादक ताल नहीं अपितु लय धारण कराता था तथा गायन, वादन, नृत्य में प्रयुक्त तालों के आधार पर बोलो की रचना करके संगीत को मनोरंजक बनाता था। प्राचीनं काल से मध्यकाल तक मृदंग या मृदंग समान वाद्यों से ही संगीत के साथ संगत की जाने का उल्लेख मिलता है। शारंगदेव ने उस काल के संगीत के लिये पुष्कर वाद्य को अव्यवहारिक बताया। कुछ राजनैतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक कारणों से संगीत के गायन, नर्तन प्रकारों में अंतर आया। प्राचीन गीत प्रकारों का प्रचलन धीरे-धीरे कम होने लगा एवं ख्याल, ठुमरी, टप्पा, गजल, भजन आदि गीत प्रकार विशेषकर उत्तरी भारत में प्रचार में आये। श्रृंगारिक गीत प्रकारों का प्राधान्य होकर उनके प्रचलन से मृदंगादि गंभीर प्रकृति के अवनद्ध वाद्यों का प्रचलन कम होकर तबला वाद्य संगत के लिये प्रचार में आया। तबले में संगत करते समय मृदंग के खुले बोल, ढोलक समान मीडयुक्त बोल एवं चांटी के बंद बोल बजाने में आसानी होने से, संगत के लिये अधिकुपयुक्त समझा जाने लगा। यद्यपि खुले बोल तबले पर बज सकते हैं तथापि मृदंग के ध्वनि का गांभीर्य तबले के वादन से प्राप्त नहीं होता। इसी कारण वर्तमान काल में भी धृवपदादि गीत प्रकारों के साथ मृदंग (पखावज) से ही संगत की जाती है। तबले के बोलो के सरल निकास, मिठास, कायदे, पेशकार, रेले, परने, गते, तिहाइयां तथा विभिन्न लयकारियों के सुंदर वादन के कारण साथ-संगत के लिये तबले ने संगीत में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया।

'गीत, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत-मूच्चते' इस प्रकार संगीत की परिभाषा की गई है। संगीत में स्वरों के आधार पर ही थाट, एवं रागों का निर्माण किया गया है। रागो का संगीत में समय, रस-भाव, आदि के अनुसार

अपना विशेष स्थान होता है। स्वर-वर्ण के आधार पर जनरंजक होने पर ही उसे राग कहा जाता है। राग के संदर्भ में कहा गया -

योयं ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानाम् स रागः कथितो बुधैः ॥

संगीत के अंतर्गत गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाऐं आती है एवं जनरंजन तीनों का मूल तत्व होता है। तबला वादन को तीनों कलाओं के साथ संगत करनी पड़ सकती है तथा तीनों में लय-ताल धारण कराने के साथ-साथ रंजकता में वृद्धि लाने को प्रयास भी करना पड़ता है। गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाओं के प्रदर्शन को स्थायित्व प्रदान करना, रस-भाव निष्पत्ति में सहोयग दैना, श्रोताओं के मन को आल्हादित कर उन्हें आनन्द प्राप्त कराना तबला संगतकार का प्रमुख कर्तव्य होता है।

तबला संगत करने वाले वादक को स्वर ज्ञान होना नितांत आवश्यक होता है तभी वह निश्चित स्वर के अनुसार वाद्य का चयन कर, वाद्य को निश्चित स्वर में मिलाने एवं स्वर को बनाये रखने में सक्षम हो सकता है। संगत करने वाले तबला वादक को गायन के गीत प्रकार, वाद्य गत प्रकार एवं नृत्य प्रकारों का ज्ञान आवश्यक होता है। तभी वह उचित संगत कर सकता है। तबला संगतकार को गायन, वादन और नृत्य के साथ संगत करने का अभ्यास जरूरी है। उसकी कल्पना शक्ति, प्रतिभा एवं निरिक्षण शक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण होनी चाहिये। आदर्श तबला संगत तभी कहलाती है। जब तबला संगतकार अपने वादन से मुख्य कलाकार (गायक, वादक या नर्तक) की कलाकृति को अर्थात् उसकी प्रस्तुती को सफल कराके यश प्रदान कराता है। यदि कोई श्रेष्ठ तबला कलाकार संगत करते समय मुख्य कलाकार का ध्यान न रखकर अपने को उच्च कलाकार दर्शाने की दृष्टि से अपने में ही मस्त होकर वादन करता है। तो वह स्वयं संगत में यशस्वी नही होगा और न ही गायक, वादन या नर्तक की प्रस्तुति को सफल होने देगा। गांयक, वादक या नर्तक के प्रस्तुतीकरण की सफलता में तबला संगतकार की अहं भूमिका होती है। स्वतंत्र तबला-बादन और साथ संगत दोनों में काफी अंतर होता है।

संगीत के अंतर्गत वर्तमान में तीन प्रमुख शाखाएं हैं, यथा-शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और सिनेमा संगीत। गीत प्रकारों में रस एवं भाव होते हैं। अतः गायन, वादन और नृत्य के रस-भाव को ध्यान में रखकर ठेका लगाना एवं संगत करना अत्यंत आवश्यक होता है।

8.3.1 शास्त्रीय संगीत (कंठ संगीत) के साथ तबला संगत

कंठ संगीत के साथ संगत गायक की गायकी पर अबलंबित होती है। शास्त्रीय गायन के साथ संगत करते समय तबला संगतकार को गीत प्रकार, उसके अर्थ, गीत का वजन, रस-भाव आदि का ध्यान रखते हुए निश्चित ताल का चुनाव करके ताल रचना के विभागों को, उसके कम या अधिक जोरकस बोलो द्वारा खाली-भरी को महत्व देकर बजनदार ठेका लगाना श्रेयस्कर होता है। समान मात्रा वाले तालों से किस ताल के ठेके से संगत करनी है, इसका ठीक चुनाव करना बहुत जरूरी होता है। कौन से गीत प्रकार के साथ कौन से ताल का ठेका रखना है तथा किस वजन से धरना चाहिये, यह ध्यान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

गायन की संगत करते समय बिलम्बित लय में ठेका साधण करने पर धीमी लय में उत्पन्न रिक्त स्थान को भरने के लिये बजनदार ठेके द्वारा ही आंदोलन उत्पन्न कर उसे भरा जा सकता है। विलंबित लय में जहां तक हा सके वहां तक दाये और बाये के आंस तथा घुमक द्वारा रिक्त स्थान को भरना चाहिये। यदि आंस या धुमक के द्वारा रिक्त स्थान भरने में कठिन जा रहा हो तो तृक, धागेत्रक, तिरकिट,आदि बोलो का सहारा लेना चाहिये। गायक के साथ सम पर आते समय छोटे सुन्दर बोल समूहों, को बजाकर अथवा छोटी तिहाईयां बजाकर सम दर्शनी चाहिए। यदि संगत के वादन में ठेके के बीच-बीच में, 1 या 2 मात्राओं के, द्रुत गति के बोल समूह को बजाकर पुन्हः ठेका धारण किया जाये तो विलंबित गति के स्वर प्रधान गायकी के लिये अधिक पोषक होता है। गायकी सरल स्वरबंध की होने पर सीधा ठेका तथा गायकी आड़ स्वरबंध की होने पर आड़ अंग का ठेका संगतकार ने धारण करना चाहिये।

लय प्रधान अर्थात् मध्य या दृत लय के गायकी की संगत करते समय ठेके का विभिन्न प्रकारों के साथ वादन करना चाहिये। जब गायक विशेष लयकारी में बोला-लाप आदि का गायन प्रस्तुत करे उस समय गायक के लय तथा बजन के अनुरूप दुगुन, आड, चौगुन, आदि बोल प्रकारों से संगत करना प्रस्तुतीकरण को अधिक रंजकता प्रदान करता है। गायक के तानों के समान उसी लयकारी में टुकड़ों का या बोल समूह का वादन अत्यंत आकर्षक होता है।

ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, तराना आदि गीत प्रकारों के साथ संगत गीत के अंगों के समान होनी चाहिये, यद्यपि ठुमरी, टप्पा, दादरा आदि गीत प्रकारों को सुगम संगीत के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है, तथापि ये गीत प्रकार शास्त्रीय स्वर, राग, ताल नियमों के अंतर्गत ही गाये जाते हैं। अतः हम इन्हें शास्त्रीय सुगम संगीत कह सकते हैं। इनके साथ वादन में ठेके के निश्चित बोल की अपेक्षा गीत के अंग के अनुसार उसके ही बजन का उतनी ही मात्रा का ठेका किन्हीं भी बोलों के आधार पर बजाने की थोड़ी स्वतंत्रता होती है अतः संगतकार को गीत का वजन समझकर ठेका धारण करना चाहिये। संगतकार को शुद्ध वादन की अपेक्षा ऐसा वादन करना चाहिये जिससे गायन

में रस परिपोष का निर्माण हो सके। गायक के झटकों एवं खटकों के समान ही उपयुक्त संगत करनी चाहिये। कलाकार के मोका देते ही विभिन्न लयकारियों में लग्गी आदि का वादन भी करना चाहिए।

8.3.2 लोक तथा सुगम संगीत के साथ तबला संगत

लोक संगीत भी सुगम संगीत के श्रेणी में ही आता है। इन गीत प्रकारों की शब्द रचना, स्वर रचना एवं ताल रचना सरल होती है। अर्थात् इन गीतों की शब्द रचना विभिन्न प्रांतों के भाषा शैली के अनुसार होकर उन्हें रागांग स्वरों का बंधन नही होता। ये गीत प्रकार स्वर प्रधान या ताल प्रधान न होकर लय प्रधान होते हैं। प्रांत-प्रांत अनुसार तथा अवसरों के अनुसार इन गीत प्रकारों की रचना की जाती है।

जैसे - गजल, कव्वाली, दादरा, लावणी, भजन, कजरी, चेती, विरहा, सोहर, झूमर, आल्हा, मांड आदि।

इन गीत प्रकारों के साथ संगत करते समय लघु तालों का या निश्चित छोटी-छोटी मात्रा के बोल समूह का ताली-खाली दर्शक बादन होता है। ऐसे वादन में तालों के शास्त्रीय नियमों का पालन आवश्यक नहीं होता। इनमें लघु तालों की निश्चित मात्रा या मात्रा खंडो का निर्वाह अवश्य करना चाहिये। यदि हम इन गीत प्रकारों के साथसंगत करने समय इन्हें शास्त्रीय संगीत की लयात्मकता से नापने का प्रयत्न करेंगे तो यह लोक संगीत के संरक्षण, मनोरंजन एवं संवर्धन के लिये घातक सिद्ध होगा। इन गीतों की संगत करते समय निश्चित मात्रां के बोल समूह का ताली-खाली दर्शन रूप में गीत के बजन के अनुसार वादन करना चाहिये। लोक गीतों के साथ संगत करने वाले ऐसे असंख्य तबला वादक होंगे जिन्हें तालों के शास्त्रीय विवेचन का कोई ज्ञान नहीं होता तथापि वे सुगम संगीत के साथ उच्च श्रेणी की संगत कर उसमें चार चांद लगा देते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि तालों के शास्त्रीय रूपों का जानकार तबला संगतकार लोक संगीत के साथ संगत करते समय असफल हो जाता है। यद्यपि लोक संगीत के कई गीत प्रकारों में समान मात्राओं का तथा समान खंडो का निर्वाह होता है तथापि गीत प्रकारों के बजन में अंतर होने से अलग अलग प्रकार के ठेकों का या बोल समूहों का वादन गीत के प्रकृति के अनुसार आवश्यक होता है। लावणी, भजन, गजल, कजरी, सोहर, आल्हा आदि में समान मात्रिक तालों का अलग-अलग प्रकार से निर्वाह संगत करते समय करने का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। जैसे -

(1) केहरवा ताल को कई प्रकार से बजाया जाता है। यथा –

(अ) धागे नधि नक धिन् - ताके नाति नक तिन्।

(आ) धिऽ धागे नधिं नक - तिंऽ ताके नति नक। आदि।

(2) "अभंग" का ठेका -

धातृ कधिं नक धिंऽ तातृ कहिं नक तिंऽ

(3) "लावणी" का ठेका -

धिंधि नातिं नातिं धागेतृक , तिंतिं नाधिं नातिं नागेतृक ।

(4) भजनी ठेका -

धिंऽ ताधिं ऽधिं नक तिंऽ ततिं ऽति नक |

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलग अलग गीत प्रकारों के साथ अलग-अलग बोल समूहों के वादन से संगत करनी चाहिये। तबला संगतकार को लोक गीतों के प्रकार, वजन, भाव आदि को समझकर संगत करनी चाहिये। सुगम या लोक संगीत के साथ संगत का अभ्यास होने पर ही कोई तबला बादक अच्छे दर्जे की संगत कर सकेगा।

8.3.3 वाद्य संगीत के साथ तबला संगत

वाद्यो के साथ संगत करना गायन की संगत करने से अलग है। सितार, सरोद, सरीखे तत् वाद्यो के साथ संगत का अपना अलग महत्व होता है। तत् वाद्यो के साथ संगत का तंत्र लयकारी को प्रधानता देने वाला होता है। लयदार स्वरालाप, जोड़, गत, झाला आदि प्रकार तबला संगतकार को लयकारी युक्त बादन में प्रोत्साहन देने वाले होते हैं। इस प्रकार की संगत में सीधा ठेका बजाना उचित नहीं होता। तथापि वाद्य वादक के वादन में उसके वादन को प्रभावशाली, उठावदार तथा मनोरंजक कराने के तरीके से तबला संगत करनी चाहिये।

सर्व प्रथम गत प्रारंभ करते ही तबला संगतकार को उठान के साथ तिहाईदार वादन करके तंतु वादक की लय के अनुसार ठेका धारण करना चाहिये। बीच बीच में रिक्त स्थान को भरने के लिये आसदार तथा जोरदार बोलो का सहारा लेना चाहिये। सम उचित बजन से दर्शानी चाहिये। गत के साथ स्वरालाप करते समय उचित स्थान आने पर तबला संगतकार को थाप आदि द्वारा दाद देनी चाहिये। गत वादन के साथ संगत करते समय गत अंग के ठेका वादन करना चाहिये तथा कायदो का दर्जेदार वादन करना चाहिये। जोड़ आलाप के समय उसी अंग से एवं लयकारी से वादन करना चाहिये।

तंतु वादन द्वारा दृत लय धारण करने पर एकाध छोटी सी तिहाई का आकर्षण युक्त वादन कर दूत लय का ठेका प्रारंभ करना चाहिए। द्रुत लय में संगत करते समय अवांतर वादन न करते हुए ठेके के ही वैचित्रयपूर्ण प्रकारों का वादन, तंतु बादक के वादन के अंग के अनुसार करना चाहिये। दृत लय में संगत करते समय वादन की ओर लक्ष्यपूर्ण ध्यान देना चाहिये। जैसे ही तंतु वादक बीच में से उठकर कोई तिडाईदार वादन करता है तो उस उठान के स्थान को ध्यान में रखकर उसी स्थान से वैसे ही तिहाई का वादन तबला बादक को करना चाहिये।

अति दृत लय में ठेका चांट को आधार मानकर बजाना चाहिये जो तंतु वादक के स्थिर स्वरों से मिलता हुआ होने से अतिशय परिणाम कारक सिद्ध होता है। इस प्रकार के संगत के लिये अभ्यास की अत्यंत आवश्यकता होती है।

8.3.4 नृत्य के साथ तबला संगत

नृत्य के साथ संगत, नृत्यकार के साथ संगत का अभ्यास करने पर अधिक हितावह होती है। नृत्य के साथ संगत करना थोड़ा कठिन काम है। नृत्य की संगत गायन एवं वादन दोनों से ही भिन्न होती है। प्रायः प्रत्येक नर्तक अपने संगतकार निश्चित रखता है क्योंकि नृत्य की संगत एकाएक करने में तबला वादक को काफी परेशानी होती है। नृत्य संगत के लिए नृत्यकार के बोल, तोड़े, परन, आदि याद होने चाहिए तभी नृत्य की संगति सफलता पूर्वक की जा सकती है। नृत्य के बोल हू-बहू तबले पर नहीं निकाले जाते वो वरन् उन बोलो को सुनकर उतनी ही मात्रा के बोल तथा उसी बजन के बोल बजाये जाते हैं। इसलिए नृत्य के एक ही बोल का निकास अलग-अलग तबला वादन अपने ढंग व उपज के अनुसार अलग-अलग तरह से करते हैं।

जैसे - अगर नृत्यकार का बोल है- 'तत तत थेई' है तो कुछ वादक इसे तबले के अनुसार तत तत घान् ही बजायेंगे, कुछ धातिर किटतक धा भी बजायेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि एक ही बोल को जिस स्तर का बादन होगा उसी स्तर से बजायेगा, हिसाब से बजायेगा।

इसके अतिरिक्त नृत्य में गत बजाने का अलग ही ढंग है। गत-निकास में नर्तक-पैर से जो चाल चलता है उसी चाल के वजन का ठेका तबले पर बजता है, जो कि मध्य या दृत-मध्य लय में होता है। जब नृत्यकार, गत-भाव प्रस्तुत करते हैं उस समय भी तबला वादक उसके पद संचालन को देखते हुए जहाँ आवश्यकता होती है इस प्रकार के बोल बजाते हैं, अन्यथा भाव में सीधा ठेका ही बजाया जाता है। इसके बाद तत्कार और तत्कार के प्रकार आते हैं। तत्कार का अर्थ है दृत गति में पद संचालन कर पैर की तैयारी प्रदर्शित करना। इस में तबला वादन

तीनताल या अन्य ताल का द्रुत लय में ठेका बजाते हैं। जहां जहां पर नर्तक तत्कार बदलते हैं या उसमें अन्य बोल लगाकर उसके प्रकार बनाते हैं उसी प्रकार तबला बादक को भी बोल बजाने चाहिये।

जैसे - द्रुत गति में –

ता थेई थेई तत्   आ थेई थेई तत्   ता थेई थेई तत्   तकि टत किट तक

यह बोल तबले पर भी इसी प्रकार बजेगा।

जैसे - धा धिं धिं धा   धा धिं धिं धा   धा तिं तिं ता   तकि टत किट तक

इसी क्रम में नृत्यकार और तबला वादक के सवाल जबाव भी होते हैं। पहले नृत्यकार अपने पैरों से कुछ बोल निकालते हैं जिसे सुनकर तबला बादक अपनी सूझबूझ के अनुसार उसी वजन का बोल उतनी ही मात्रा में बजाते हैं। यही क्रम, पूर्ण संगति में चलता है।

स्वयं जांच अभ्यास

8.1 तत वाद्यों के साथ किससे संगत होती है ?

क) ताल वाद्य

ख) सुशिर वाद्य

ग) घन वाद्य

घ) तत वाद्य

8.2 सुषिर वाद्य के साथ किस वाद्य की संगत की जाती है ?

क) घन वाद्य

ख) ताल वाद्य

ग) तत वाद्य

घ) सुशिर वाद्य

8.3 ताल वाद्य के साथ किस वाद्य की संगत की जाती है ?

क) तत वाद्य

ख) सुशिर वाद्य

ग) उपरोक्त सभी

8.4 ¼ (एक बटा चार) का प्रयोग द्रुत ख़याल में होता है ?

क) सही

ख) गलत

8.5 ½ (एक बटा दो) का प्रयोग विलंबित ख़याल के साथ होता है ?

क) सही

ख) गलत

8.4 सारांश

तबला संगत में किसी भी संगीत में प्रयुक्त होने वाले तालों को बजाने के तरीके की पहचान होना। इससे ताल -ज्ञान के साथ-साथ बोलों के स्वरुप को जानने में वृद्धि होती है। तबला संगत के नियमों की जानकारी होना। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय कंठ संगीत, लोक संगीत, सुषिर तथा तत वाद्यों के साथ तबला संगत में तालों के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा बोलों का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है।

8.5 शब्दावली

- विश्रांति : इसे विश्राम या आराम कुछ देर रुकना कहते हैं
- लय: गायन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय:वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय:वादन/गायन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

8.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

8.1 उत्तर: क)

8.2 उत्तर: ख)

8.3 उत्तर: ग)

8.4 उत्तर: ख)

8.5 उत्तर: क)

8.7 संदर्भ

डॉ.केशव शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, मार्च 2024।

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

8.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

8.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. संगत का परिचय लिखिए/बताइए ?

प्रश्न 2. शाश्त्रीय संगीत (कंठ संगीत) के साथ तबला संगत कैसे होती है विस्तारपूर्वक लिखिए ?

प्रश्न 3. लोक और सुगम संगीत के साथ तबला संगत कैसे होती है विस्तारपूर्वक लिखिए ?

प्रश्न 4. वाद्यों के साथ तबला संगत को विस्तारपूर्वक समझाइये ?

प्रश्न 5. नृत्य के साथ तबला संगत को विस्तारपूर्वक समझाइये ?

इकाई - 9
झुमरा ताल में कायदा और रेला, लग्गी और लड़ी कहरवा और दादरा ताल में (वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
9.1	भूमिका
9.2	उद्देश्य तथा परिणाम
9.3	झुमरा ताल का परिचय
9.3.1	कायदा की परिभाषा
9.3.2	झुमरा ताल में कायदा
9.3.3	रेला की परिभाषा
9.3.4	झुमरा ताल में रेला
9.3.5	लग्गी और लड़ी की परिभाषा
9.3.6	कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी
	स्वयं जांच अभ्यास1
9.4	सारांश
9.5	शब्दावली
9.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.7	संदर्भ
9.8	अनुशंसित पठन
9.9	पाठगत प्रश्न

9.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह नवम् इकाई है। इस इकाई में वादन संदर्भ में, झुमरा और झुमरा ताल ताल के कायदे और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को भातखंडे स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में कायदों का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, तथा आनंददायक होता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में कायदों के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा संगीत के अभ्यास के लिए कायदों का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है। बोलों का चलन नियम के अनुसार किया जाता है तो उसे कायदा कहा जाता है। इसके बाद कायदे के पलटे भी बजते हैं। इससे लय तथा लयकारियों के ज्ञान में वृद्धि होती है तथा इन्हीं कायदों से बोलों की सफाई और निकास करने में सहायता मिलती है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी कायदों के स्वरूप के साथ-साथ लग्गी, लड़ी में बजाए जाने वाले कुछ प्रारम्भिक वर्णों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, उन्हें भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से झुमरा ताल ताल के कायदे और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को तबला वाद्य पर बजा सकेंगें।

9.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- झुमरा ताल और झुमरा ताल के कायदे और रेले के स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी के स्वरूप की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- झुमरा ताल के कायदे को बजाने की क्षमता विकसित करना।

- कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- झुमरा ताल के कायदे और रेले को भातखंडे स्वरलिपि में लिखने की क्षमता विकसित करना।
- कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को भातखंडे स्वरलिपि में लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, झुमरा ताल और झुमरा ताल के कायदे और रेले, और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी के स्वरूप के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, झुमरा ताल और झुमरा ताल के कायदे और रेले और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को लिखने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, झुमरा ताल और झुमरा ताल के कायदे और रेले और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी को बजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,वादन के अंतर्गत, झुमरा ताल और झुमरा ताल के कायदे और रेले और कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

9.3 झुमरा ताल का परिचय (वादन के संदर्भ में)

झूमरा या झूमा तबले का ताल है। विलम्बित लय के ख्याल गायन की संगति में इसका विशेष रूप से प्रयोग होता है। यह मिश्र जाति का अर्द्ध समपद ताल है, क्योंकि इसका विभाग क्रमशः 3/4/3/4 का है। कभी-कभी कुछ पुराने तबला वादक इसमें स्वतन्त्र वादन भी प्रस्तुत करते हैं। अतः उस समय इसमें पेशकार, कायदा, बाँट, गत आदि का भी प्रस्तुतिकरण होता है। इसमें 14 मात्रा, 4 विभाग, 3 ताली और 1 खाली है।

थोड़े से अन्तर के साथ इसके 2 ठेके प्रचार में हैं –

एकगुन –

1	2	3	|	4	5	6	7	|	8	9	10	|	11	12	13	14
धीं	ऽधा	तिरकिट	|	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	|	तिं	ऽता	तिरकिट	|	धीं	धीं	धागे	तिरकिट
X			|	**2**				|	**0**			|	**3**			

अथवा

1	2	3	|	4	5	6	7	|	8	9	10	|	11	12	13	14
धीं	धा	तिरकिट	|	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	|	तिं	ता	तिरकिट	|	धीं	धीं	धागे	तिरकिट
X			|	**2**				|	**0**			|	**3**			

9.3.1 कायदा की परिभाषा

कायदा के साथ एक और शब्द अभिन्नता से जुड़ा होता है-कानून-कायदा कानून। कायदा का अर्थ है पद्धति। किसी भी कार्य को करने का ढंग, सलीका। अंग्रेजी में इसके लिए METHOD शब्द का प्रयोग होता है।

कायदा का महत्त्व जीवन के हर क्षेत्र में होता है। और, तबला भी इससे अछूता, अस्पर्शित नहीं है। कायदा शब्द की उत्पत्ति फारसी भाषा के कैद शब्द से हुई है। अतः इसमें कुछ कैद, प्रतिबन्ध और पाबन्दियाँ भी होती हैं। कायदे की शिक्षा विद्यार्थियों को उनके हाथ के रख-रखाव और बोलों के निकास के लिए दी जाती है। इसलिए, तबला के विद्यार्थियों की संगीत शिक्षा योग्य गुरुओं द्वारा प्रायः कायदे से ही आरम्भ की जाती है।

तबला वादन के क्षेत्र में कायदा उस रचना को कहते हैं। जिसकी गणना तबले के महत्त्वपूर्ण बोलों में होती है। चूँकि यह तबले का बोल होता है। अतः इसमें मात्र तबले के वर्णों का ही प्रयोग होता है, और यह तबले के तालों में ही पाया जाता है। कायदा की रचना करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए कि, जिस ताल में कायदा हो - वह उस ताल के विभाग और ताली, खाली के अनुरूप हो।

इसे झुमरा ताल के निम्नलिखित प्रारम्भिक और अत्यन्त प्रचलित कायदा से समझा जा सकता है –

1	2	3	4	5	6	7
धाऽतिर	किटतक	तिरकिट	धाऽतिऽ	धाऽगेऽ	तिंऽनाऽ	किऽनाऽ
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
ताऽतिर	किटतक	तिरकिट	धाऽतिऽ	धाऽगेऽ	धिंऽनाऽ	गिऽनाऽ
0			**3**			

पल्टा, प्रकार, पेंच, किस्में, विस्तार विस्तारी

भारतीय संगीत के क्षेत्र में सृजनशीलता का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य संगीत में संरचनाकार (कंपोजर) का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है, कलाकार की भूमिका उसे ठीक उसी तरह प्रस्तुत करने तक की होती है। जबकि, भारतीय संगीत में इसके विपरीत कलाकार की भूमिका ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। क्योंकि वह एक छोटी सी रचना को घण्टों अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय देता हुआ गाता या बजाता है।

जब किसी एक बोल का उसमें प्रयुक्त वर्णों के आधार पर भिन्न-भिन्न तरीके से विस्तार किया जाता है, तो उसे पल्टा, प्रकार, पेंच, किस्में आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। एक ही बोल को अलग-अलग जगहों से घुमाने या पलटने की प्रक्रिया होती है।

कायदा का विस्तार उसमें प्रयुक्त वर्णों के आधार पर किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के पल्टों का समावेश करके इसका विकास किया जाता है, और इसका समापन प्रायः तिहाई से होता है। एकल वादन और संगति दोनों में ही कायदा का वादन प्रमुखता से किया जाता है।

नीचे एकताल का एक कायदा प्रस्तुत है-

धातीधागे	धिनगिन	तिरकिटतकधा	गीनघेन	धागेतिरकिट	तिनकिन
X		0		2	
तातीताके	तिनकिन	तिरकिटतकधा	गीनघेन	धागेतिरकिट	धिनगिन
0		3		4	

9.3.2 झुमरा ताल में कायदा

झुमरा ताल कायदा

1	2	3	4	5	6	7
धाऽतिर	किटतक	तिरकिट	धाऽतिऽ	धाऽगेऽ	तिंऽनाऽ	किऽनाऽ
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
ताऽतिर	किटतक	तिरकिट	धाऽतिऽ	धाऽगेऽ	धिंऽनाऽ	गिऽनाऽ
0			**3**			

पलटे -

1. धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाती धागेधिना	गिनाधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे तिनाकिना।
ताऽतिरकिटतक तिरकिटताती ताकेधिना	गिनाधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे धिनागिना।
2. धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाती धाऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे तीनाकिना।
ताऽतिरकिटतक तिरकिटताती ताऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे धिनागिना।
3. धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाऽतिर किटतकतिरकिट	धातीधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे तीनाकिना।
ताऽतिरकिटतक तिरकिटताऽतिर किटतकतिरकिट	धातीधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे धिनागिना।
4. धातीधागे धिनागिना धाऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे तीनाकिना।
तातीताके तीनाकिना ताऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे धिनागिना।\
5. धातीधागे धिनागिना धातीधागे	धिनाधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे तीनाकिना।
तातीताके तीनाकिना तातीताके	तीनाधाऽतिर किटतकतिरकिट धातीधागे धिनागिना।

तिहाई –

धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाती धागेधिना	गिनाधाती धाऽऽऽ धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाती
धागेधिना गिनाधाती धाऽऽऽ	धाऽतिरकिटतक तिरकिटधाती धागेधिना गिनाधाती । धा

9.3.3 रेला की परिभाषा

रेला भी मूलतः कायदा की तरह का ही एक बोल होता है। लेकिन, इसके वर्ण अपेक्षाकृत छोटे, अधिक कर्णप्रिय, मधुर और तेज लय में बजने वाले होते हैं। यही कारण है कि कोई कायदा जहाँ चौगुन लय में समाप्त हो जाता है, वहीं रेला की शुरूआत ही चौगुन लय से होती है, और यह अठगुन या उससे भी तेज लय में बजता है। तिरकिट, धेनगिन, धेन आदि शब्दों का इसमें मुख्य रूप से प्रयोग होता है। इसमें चाँटी और लव के बोलों का अधिक प्रयोग होता है। इसी कारण दिल्ली और अजराड़ा घराने के रेले सुनने में काफी खुशनुमा और

मधुर प्रतीत होते हैं। बनारस आदि घराने में रेला को कायम करके उसमें गत, फ़र्द, टुकड़े, परणों का वादन करते हुए पुनः रेले पर लौटते हैं।

रेला यूँ तो तबला का एक प्रमुख बोल है ही, जिसका वादन कलाकार वादन की खूबसूरती और तैयारी दिखाने के लिए करते हैं। एकल वादन में इसका प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है, साथ ही सितार, सरोद, वायलिन और बाँसुरी जैसे वाद्यों की संगति के समय भी इसका प्रयोग किया जाता है। अति द्रुतलय में रेला की छटा देखते ही बनती है जब यह धाराप्रवाह सा सुनाई देता है।

9.3.4 झुमरा ताल में रेला

झूमरा ताल में एक रेला -

धाSतिर	किटतक	तिरकिट	धाSतिर	किटतक	तिरकिट	तिंSSS
X			2			
ताSतिर	किटतक	तिरकिट	धाSतिर	किटतक	तिरकिट	धिंSSS
0			3			

बनारस घराने का एक रेला तीनताल में -

धाSतेटे	घिड़नग	दिनतक	धाSतेटे	घिड़नग	दिनतक	धाSतिर	किटितक
X				2			
ताSतेटे	किड़नक	तेनतक	ताSतेटे	घिड़नक	दिनतक	धाSतिर	किटितक
0				3			

9.3.5 लग्गी और लड़ी की परिभाषा

लग्गी-

मुख्यत: दादरा, कहरवा आदि तालों में चंचल प्रकृतियुक्त कायदे के समान रचना को लग्गी कहते हैं। यह लोक लय-ताल वाद्यों की विशेष वादन-सामग्री है। ठुमरी गायन की प्रगति के साथ लग्गी वादन में भी खूब प्रगति हुई। इसका प्रयोग ठुमरी, गज़ल, लोक-गीत भाव-संगीत आदि शृंगारिक गायन शैलियों के साथ खूब किया जाता है।

कभी-कभी तबला-वादक अपने सोलो-वादन में भी इसका प्रयोग करते हैं, क्योंकि इससे साधारण श्रोता सहज ही आकृष्ट हो जाते हैं। कायदे की भांति लग्गी में भी खाली-भरी के बराबर-बराबर के दो पल्ले होते हैं। इसके विस्तार को 'बाँट' कहते हैं और किसी बाँट को रेले की भाँति द्रुत लय में बजाकर कायम रखने को 'लड़ी' कहते हैं। लग्गी-लड़ी वादन का तबला के अतिरिक्त ढोलक, नाल, नक्कारा, दुक्कड़ आदि वाद्यों पर भी खूब प्रयोग होता है।

लड़ी-

जिस प्रकार किसी कायदे के किसी एक भाग या किसी पलटे को द्रुत लय में धारा-प्रवाह रीति से वादन को रेला कहते हैं, उसी प्रकार लग्गी के किसी एक भाग को या उसके किसी एक बांट को द्रुत लय में देर तक बजाने और अटूट प्रवाह-सा बनाये रखने को 'लड़ी' या 'लड़ी बांधना' कहते हैं। रेला और लड़ी की प्रकृति में बहुत कुछ साम्य है।

हिन्दी भाषा के लड़ शब्द से लड़ी बना है। गले में पहनने का आभूषण- माला या हार में मोती, मूंगा या पुष्पों से गूँथी हुई श्रृंखला को लड़ कहते हैं। लय-वाद्यों में लड़ी का स्वरूप उसी हार की लड़ को ध्यान में रखने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

9.3.6 कहरवा और दादरा ताल में लग्गी और लड़ी

कहरवा ताल में लग्गी –

1 -	धाती धाऽग धादि गिन	ताती ताऽग धादि गिन ॥
2 -	धाति टधा तिट धाति	धाति टघि नड़ किन ।
	ताति टता तिट ताति	धाति टघि नड़ धिंन ॥
3 -	धाति टधा तिट तिन	ताति टधा तिट धिन ॥

दादरा ताल में लग्गी –

1 -	धाSतिट धिड़नग तिनतक	ताSतिट किड़नग धिनतक ॥
2 -	धिनगिन तकतक तिनकिन	तिनकिन तकतक धिनगिन ॥

कहरवा ताल में लड़ी -

1 -	धाति धागे तिना किना	ताति ताके धिंना गिना ॥
2 -	धिन गिन तिन किन	तिन किन धिन गिन ॥

दादरा ताल में लड़ी –

1 -	धाSतिर किटतक तिरकिट	ताSतिर किटतक तिरकिट ॥
2 -	धागेधीना गिनाताके तिनाकिना	ताकेतिना किनाधागे धीनागिना ॥

स्वयं जांच अभ्यास 1

9.1 झुमरा ताल में कितनी मात्राएँ हैं?

क) 14

ख) 12

ग) 10

घ) 8

9.2 कायदे के बीच में क्या बजाया जाता हैं?

क) रेला

ख) पलटे

ग) टुकड़े

घ) संगीत

9.3 कायदे में कितने पलटे बजते है ?

क) चार

ख) दो

ग) अनगिनत

घ) इसमें कोई भी नहीं

9.4 कायदा किन किन तालों में बज सकता है?

क) सिर्फ तीनताल में

ख) सभी तालों में

9.5 कायदे का अंत तिहाई से किया जाता है?

क) सही

ख) गलत

9.4 सारांश

झुमरा ताल भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रचलित ताल हैं। शास्त्रीय संगीत के वादन के अंतर्गत झुमरा ताल को बजाया जाता है। शास्त्रीय संगीत में तालों के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा संगीत के अभ्यास के लिए कायदों का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है। यह कायदे अलग-अलग छंदों में होते हैं जो विलंबित लय में, मध्य लय में बजाए जाते हैं। इन्हीं कायदों से , तालों के प्रस्तुतीकरण के समय, विभिन्न प्रकार के पलटे, प्रकारों और लग्गी लड़ियों का निर्माण किया जाता है।

9.5 शब्दावली

- तिहाई – संगीत में तिहाई का मतलब है, बोलों के एक विशिष्ट समूह को तीन बार बजाना I
- पलटा - एक ही बोल को अलग-अलग जगहों से घुमाने या पलटने की प्रक्रिया को पलटा कहा जाता है।
- लय: वादन/वादन में बीत रहे समय की समान गति को 'लय' कहा जाता है।
- विलंबित लय:वादन/वादन के अंतर्गत जब लय बहुत धीमी गति मे चलती है तो उसे विलंबित लय कहते हैं।
- द्रुत लय:वादन/वादन के अंतर्गत जब लय बहुत तेज गति मे चलती है तो उसे द्रुत लय कहते हैं।

9.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

9.1 उत्तर: क)

9.2 उत्तर: ख)

9.3 उत्तर: ग)

9.4 उत्तर: ख)

9.5 उत्तर: क)

9.7 संदर्भ

श्री विक्रांत शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, अगस्त 2024।

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

9.8 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

9.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. झुमरा ताल का परिचय लिखिए ?

प्रश्न 2. भातखंडेताललिपि पद्धति के अनुसार झुमरा ताल के बोल लिखिए ?

प्रश्न 3. झुमरा ताल का एक कायदा पाँच पलटों और तिहाई के साथ लिखिए ?

प्रश्न 4. रेला की परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 5. अलग अलग तालों में दो रेले लिखिए ?

प्रश्न 6. लग्गी और लड़ी की परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 7. कहरवा और दादरा ताल में दो - दो लग्गी, लड़ी लिखिए ?

इकाई -10
पाठ्यक्रम में प्रयुक्त तिलवाड़ा ताल
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
10.1	भूमिका
10.2	उद्देश्यतथा परिणाम
10.3	तिलवाड़ा ताल का परिचय
10.3.1	तिलवाड़ा ताल का ठेका व एकगुन
10.3.2	तिलवाड़ा ताल की दुगुन
10.3.3	तिलवाड़ा ताल की तिगुन
10.3.4	तिलवाड़ा ताल की चौगुन
10.4	स्वयं जांच अभ्यास1
10.5	सारांश
10.6	शब्दावली
10.7	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8	संदर्भ
10.9	अनुशंसित पठन
10.10	पाठगत प्रश्न

10.1 भूमिका

संगीत (वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह दसवीं इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, तिलवाड़ा ताल को भातखंडे स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, वैचित्रतापूर्ण तथा आनंददायक होता है। आज के समय में शास्त्रीय संगीत के कलाकार तालों को अपने मंच प्रदर्शन के समय प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत ताल का, शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में भी प्रयुक्त होता है, जिसके आधार पर कई मधुर तालों के प्रकार, तिहाई, उठान, लग्गी इत्यादि का निर्माण हुआ है तथा हो रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी तिलवाड़ा ताल के स्वरूप के साथ-साथ भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही क्रियात्मक रूप से तिलवाड़ा ताल को बजा सकेंगे।

10.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- तिलवाड़ा ताल, की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- तिलवाड़ा ताल, को भातखंडे स्वरलिपि में लिखने की क्षमता विकसित करना।
- तिलवाड़ा ताल, को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- छात्र को वादन के दौरान सुधार करने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी वादन के तकनी की पहलुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएगा
- पाठ्यक्रम की तालों को लिखने की निपुणता प्राप्त करने में सक्षम होंगे।
- तालों को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

10.3 तिलवाड़ा ताल का परिचय (वादन के संदर्भ में)

गुनिजन सुघड़ ताल तिलवाड़ा। तीनताल की बड़ी बहन ये,
बजत नहीं धातीनाड़ा। कछुआ की सी चाल सुहानी,
मधु बरसत नहीं काड़ा ॥१॥

बड़े ख्याल संग शोभित है जग, ठेका बजत सुघाड़ा।
सोलह मात्रा चार भाग संग, नौ खाली गुनि ताड़ा ॥२॥

साधक साधो विविध जतन से, ख्याल न होय कबाड़ा।
चंचल ताल कहावे साधो, 'ब्रजरंग ' ये तिलवाड़ा ॥३॥ रचनाकार - पंडित देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

ताल मूलतः तीनताल का विलम्बित रूप है। 16 मात्रा में निबद्ध विलम्बित ख्याल गायन की संगति इसी ताल द्वारा की जाती है। यही कारण है कि इस ताल की मात्रा अवधि 32, 64 मात्राओं तक बढ़ायी जा सकती है। यदा-कदा बुजुर्ग तबला वादकों द्वारा इसमें स्वतन्त्र वादन भी प्रस्तुत किया जाता है। इसमें एक प्रकार का गाम्भीर्य होता है। इसकी मात्रा, विभाग, ताली, खाली आदि तीनताल के समान है।

10.3.1 तिलवाड़ा ताल का ठेका व एकगुन

एकगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	तिरकिट	धीं	धीं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धीं	धीं
x				2				0				3			

10.3.2 तिलवाड़ा ताल की दुगुन

दोगुन –

1	2	3	4	5	6	7	8
धातिरकिट	धींधीं	धाधा	तिंतिं	तातिरकिट	धिंधिं	धाधा	धींधीं
X				**2**			
9	10	11	12	13	14	15	16
धातिरकिट	धींधीं	धाधा	तिंतिं	तातिरकिट	धिंधिं	धाधा	धींधीं
0				**3**			

10.3.3 तिलवाड़ा ताल की तिगुन

तिगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8
धातिरकिटधीं	धींधाधा	तिंतिंता	तिरकिटधिंधिं	धाधाधीं	धींधातिरकिट	धींधींधा	धातिंतिं
X				**2**			
9	10	11	12	13	14	15	16
तातिरकिटधिं	धिंधाधा	धींधींधा	तिरकिटधींधीं	धाधातिं	तिंतातिरकिट	धिंधिंधा	धाधींधीं
0				**3**			

10.3.4 तिलवाड़ा ताल की चौगुन

चौगुन

1	2	3	4
धातिरकिटधींधीं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधींधीं ।
X			
. 5	6	7	8
धातिरकिटधींधीं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधींधीं ।
2			

9	10	11	12	
धातिरकिटधींधीं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधींधीं	।
0				
13	14	15	16	
धातिरकिटधींधीं	धाधातिंतिं	तातिरकिटधिंधिं	धाधाधींधीं	।
3				

10.4 स्वयं जांच अभ्यास

स्वयं जांच अभ्यास 1

10.1. तिलवाड़ा ताल में कितनी मात्राएं होती हैं?

क) 10

ख) 12

ग) 14

घ) 16

10.2. तिलवाड़ा ताल में कितनी ताली होती हैं?

क) 1

ख) 2

ग) 3

घ) 4

10.3. तिलवाड़ा ताल में खाली कौन सी मात्रा पर होती हैं?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

10.4. तिलवाड़ा ताल में सम कौन सी मात्रा पर होता है?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

10.5. तिलवाड़ा ताल में कितनी मात्राएं होती हैं?

क) 10

ख) 12

ग) 6

घ) इसमें कोई नहीं

10.6. तिलवाड़ा ताल में कितनी खाली होती हैं?

क) 1

ख) 2

ग) 3

घ) 4

10.7 तिलवाड़ा ताल में 10वीं मात्रा पे कोनसा बोल आता हैं?

क) ता

ख) धिन

ग) तिरकीट

घ) तीट

10.8. तिलवाड़ा ताल में धा कितने होते है?

क) 5

ख) 1

ग) 3

घ) 6

10.9. तिलवाड़ा ताल में 11वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) धिं

ग) तिं

घ) ता

10.10 तिलवाड़ा ताल में 5वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) धी

ग) ती

घ) ता

10.5 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। इन तालों में तिलवाड़ा काफी प्रयोग की जाती हैं। तिलवाड़ा ताल 16 मात्रा की ताल है। इस ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। तिलवाड़ा ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की बंदिशों, गतों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि क साथ भी बजाया जाता है।

10.6 शब्दावली

- एकगुण: ठाह लय में बोलों को बजाना।
- दुगुण:- दुगनी लय में बोलों को बजाना।
- तिगुण: तिगुनी लय में बोलों को बजाना।
- चौगुण:- चौगुनी लय में बोलों को बजाना।

10.7 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

10.1 उत्तर: घ)

10.2 उत्तर: ग)

10.3 उत्तर: ग)

10.4 उत्तर: क)

10.5 उत्तर: घ)

10.6 उत्तर: क)

10.7 उत्तर: ग)

10.8 उत्तर: क)

10.9 उत्तर: ग)

10.10 उत्तर: क)

10.8 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

10.9 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

10.10 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. तिलवाड़ा ताल का परिचय लिखिए।

प्रश्न2. तिलवाड़ा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन लिखिए ।

प्रश्न3. तिलवाड़ा ताल को हाथ पर बोलकर बताइए।

प्रश्न4. तिलवाड़ा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन हाथ पर बोलकर बताइए।

इकाई -11
पाठ्यक्रम में प्रयुक्त सूल ताल
(वादन के सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
11.1	भूमिका
11.2	उद्देश्यतथा परिणाम
11.3	सूल ताल का परिचय
11.3.1	सूल ताल का ठेका व एकगुन
11.3.2	सूल ताल की दुगुन
11.3.3	सूल ताल की तिगुन
11.3.4	सूल ताल की चौगुन
11.4	स्वयं जांच अभ्यास1
11.5	सारांश
11.6	शब्दावली
11.7	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8	संदर्भ
11.9	अनुशंसित पठन
11.10	पाठगत प्रश्न

11.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह ग्यारहवीं इकाई है। इस इकाई में संगीत में प्रयुक्त होने वाली सूल ताल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का विशेष महत्व रहता है। गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। ध्रुपद गायकी में सूल ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। सूल ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में पखावज़ पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। इस ताल को शास्त्रीय संगीत की बंदिशों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, इत्यादि के साथ भी बजाया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी सूल ताल की मूलभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से उन्हें बजा सकेगें।

11.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- सूल ताल का परिचय प्रदान करना।
- सूल ताल को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- सूल ताल की लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थीमें कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, सूल ताल के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, सूल ताल कोबजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, सूल ताल के वादन द्वारा कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, सूल ताल को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी।

11.3 सूल ताल का परिचय

दस मात्रा गम्भीर प्रकृति, पाँच भाग को जान,
एक, पाँच, सात पर ताली, तीन, नो खाली मान।
तीन, नो खाली मान, मृदंग पर अति सोहे,
'ब्रजरंग' ध्रुपद के संग, सूल ताल मन मोहे ॥ **रचनाकार - पंडित देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'**

मोहम्मद करम इमाम ने सूलताल को अमीर खुसरो द्वारा रचित 17 तालों में से एक माना है, आचार्य वृहस्पति ने अदन उल मूसीकी नामक पुस्तक के आधार पर इस ताल का नाम उसूले-फाख्ता दिया है, जो बाद में बिगड़कर सूलफाख्ता हो गया। उसूल का अर्थ सिद्धान्त होता है, और फाख्ता पंडुक (गुलगुचया) नामक चिड़िया को कहते हैं। लोगों का मत है कि इस चिड़िया की बोली के आधार पर इस ताल की रचना हुई है। फाख्ता की बोली कुछ इस प्रकार होती है -

कू S S S कू S कू S S S

सूलताल पखावज का ताल है। इसका वादन मध्य और द्रुत लय में होता है। वीणा वादन और ध्रुवपद की संगति में यह प्रयुक्त होता है। एकल पखावज वादन भी इस पर होता है। इसके कई ठेके प्रचलित हैं, किन्तु पहला ठेका अधिक प्रचार में है -

यह चतस्त्र जाति का समपद ताल है।

11.3.1 सूल ताल का ठेका व एकगुन

एकगुन –

पखावज के लिए-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दीं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
X		**0**		2		3		0	

तबला के लिए-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धीं	तिरकिट	धीं	धीं	धा	गे	तू	ना	क	ता
X		0		2		3		0	

11.3.2 सूल ताल की दुगुन

दुगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धाधा	दींता	किटधा	तिटकत	गदिगन	धाधा	दींता	किटधा	तिटकत	गदिगन
X		0		2		3		0	

11.3.3 सूल ताल की तिगुन

तिगुन –

1 –	2	3	4	5	6
धाधादीं	ताकिटधा	तिटकतगदि	गनधाधा	दींताकिट	धातिटकत
X		0		**2**	
7	8	9	10		
गदिगनधा	धादींता	किटधातिट	कतगदिगन		
3		**0**			

11.3.4 सूल ताल की चौगुन

चौगुन -

1	2	3	4	5	6
धाधादींता	किटधातिटकत	गदिगनधाधा	दींताकिटधा	तिटकतगदिगन	धाधादींता
X		**0**		**2**	
7	8	9	10		
किटधातिटकत	गदिगनधाधा	दींताकिटधा	तिटकतगदिगन		
3		**0**			

11.4 स्वयं जांच अभ्यास

स्वयं जांच अभ्यास 1

11.1. सूलताल में तीसरी मात्रा पे खाली होती हैं?

क) गलत

ख) सही

11.2. सूलताल में 13मात्राएँ होती हैं?

क) सही

ख) गलत

11.3. सूलताल में खाली कौन सी मात्रा पर होती हैं?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 7

11.4. सूलताल में कितने सम होते है?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

11.5. सूलताल में कितनी मात्राएं होती हैं?

क) 12

ख) 16

ग) 10

घ) 8

11.6. सूलताल में कितनी ताली होती हैं?

क) 4

ख) 2

ग) 3

घ) 6

11.7 सूलताल में कितनी खाली होती हैं?

क) 2

ख) 5

ग) 6

घ) 3

11.8. सूलताल में सम कौन सी मात्रा पर होता है?

क) 1

ख) 6

ग) 3

घ) 5

11.9. सूलताल में दसवीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) धिं

ग) गन

घ) ता

11.10 सूलताल में 5वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) धी

ग) किट

घ) ता

11.5 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। इन तालों में सूलताल काफी प्रयोग की जाती हैं। सूलताल 10 मात्रा की ताल है। इस ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में पखावज़ पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। सूलताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद , बंदिशों, गतों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, नृत्य इत्यादि के साथ भी किया जाता है।

11.6 शब्दावली

- एकगुण: ठाह लय में बोलों को बजाना।
- दुगुण:- दुगनी लय में बोलों को बजाना।
- तिगुण: तिगुनी लय में बोलों को बजाना।
- चौगुण:- चौगुनी लय में बोलों को बजाना।

11.7 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

11.1 उत्तर: ख)

11.2 उत्तर: ख)

11.3 उत्तर: ग)

11.4 उत्तर: क)

11.5 उत्तर: ग)

11.6 उत्तर: ग)

11.7 उत्तर: क)

11.8 उत्तर: क)

11.9 उत्तर: ग)

11.10 उत्तर: ग)

11.8 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश ।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद ।

11.9 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश ।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद ।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

11.10 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. सूलताल का परिचय लिखिए ?

प्रश्न2. सूलताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन लिखिए ?

प्रश्न3. सूलताल को हाथ पर बोलकर बताइए ?

प्रश्न4. सूलताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन हाथ पर बोलकर बताइए ?

इकाई -12
पाठ्यक्रम में प्रयुक्त झुमरा ताल
(वादन के सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
12.1	भूमिका
12.2	उद्देश्यतथा परिणाम
12.3	झुमरा ताल का परिचय
12.3.1	झुमरा ताल का ठेका व एकगुन
12.3.2	झुमरा ताल की दुगुन
12.3.3	झुमरा ताल की तिगुन
12.3.4	झुमरा ताल की चौगुन
12.4	स्वयं जांच अभ्यास1
12.5	सारांश
12.6	शब्दावली
12.7	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8	संदर्भ
12.9	अनुशंसित पठन
12.10	पाठगत प्रश्न

12.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह बारवीं इकाई है। इस इकाई में संगीत में प्रयुक्त होने वाली झुमरा ताल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है। झुमरा ताल पखावज और तबला की ताल है भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का विशेष महत्व रहता है। गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। ख़याल गायकी में झुमरा ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। झुमरा ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। इस ताल को शास्त्रीय संगीत की बंदिशों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि के साथ भी बजाया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी झुमरा ताल की मूलभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से उन्हें बजा सकेगें।

12.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- झुमरा ताल का परिचय प्रदान करना।
- झुमरा ताल को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- झुमरा ताल की लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थीमें कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, झुमरा ताल के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, झुमरा ताल कोबजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, झुमरा ताल के वादन द्वारा कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, झुमरा ताल को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी।

12.3 झुमरा ताल का परिचय

झूमि झूमि चलत चाल, अति विचित्र अति निराल, गुनिजन नित करत गान,
साधक हूँ धरत ध्यान। मंथर गति बजत ताल, जै जै जै झूमरा ताल ॥१॥

मात्रा चौदह सोहत हैं, चार भाग मोहत हैं, अर्ध समपदी मन मोहे,
चंचल छवि अति सोहे। मानत गुनियन की ताल, जै जै जै झूमरा ताल ॥२॥

एक, चार, ग्यारह ताली, सजत अंग आठ खाली, लचकत है विविध ढंग,
फेंकत है नवल रंग। ऐसी मन मोहक ताल, जै जै जै झूमरा ताल ॥३॥

तबला पर बाजत है, मधुर छवि साजत है, बरनत हैं 'ब्रजरंग',
साजत है ख्याल संग। माया तेरी अति विशाल, जै जै जै झूमरा ताल ॥४॥

रचनाकार पंडित देवेन्द्र वर्मा-'ब्रजरंग'

झूमरा या झूमा तबले का ताल है। विलम्बित लय के ख्याल गायन की संगति में इसका विशेष रूप से प्रयोग होता है। यह मिश्र जाति का अर्द्ध समपद ताल है, क्योंकि इसका विभाग क्रमशः 3/4/3/4 का है। कभी-कभी कुछ पुराने तबला वादक इसमें स्वतन्त्र वादन भी प्रस्तुत करते हैं। अतः उस समय इसमें पेशकार, कायदा, बाँट, गत आदि का भी प्रस्तुतिकरण होता है।

इसमें 14 मात्रा, 4 विभाग, 3 ताली और 1 खाली है।

थोड़े से अन्तर के साथ इसके 2 ठेके प्रचार में हैं –

12.3.1 झुमरा ताल का ठेका व एकगुन

एकगुन –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धीं	Sधा	तिरकिट	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तिं	Sता	तिरकिट	धीं	धीं	धागे	तिरकिट
X			**2**				**0**			**3**			

अथवा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धीं	धा	तिरकिट	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तिं	ता	तिरकिट	धीं	धीं	धागे	तिरकिट
X			**2**				**0**			**3**			

12.3.2 झुमरा ताल की दुगुन

दोगुन –

1	2	3	4	5	6	7
धींऽधा	तिरकिटधीं	धींधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धींधीं	धागेतिरकिट
X			2			
8	9	10	11	12	13	14
धींऽधा	तिरकिटधीं	धींधागे	तिरकिटतिं	ऽतातिरकिट	धींधीं	धागेतिरकिट
0			3			

12.3.3 झुमरा ताल की तिगुन

तिगुन -

1	2	3	4	5	6	7
धींऽधातिरकिट	धींधींधागे	तिरकिटतिंऽता	तिरकिटधींधीं	धागेतिरकिटधीं	ऽधातिरकिटधीं	धींधागेतिरकिट
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
तिंऽतातिरकिट	धींधींधागे	तिरकिटधींऽधा	तिरकिटधींधीं	धागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधीं	धींधागेतिरकिट
0			**3**			

12.3.4 झुमरा ताल की चौगुन

चौगुन -

1	2	3	
धींऽधातिरकिटधीं	धींधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधींधीं	
X			
4	5	6	7
धागेतिरकिटधींऽधा	तिरकिटधींधींधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धींधींधागेतिरकिट
2			
8	9	10	
धींऽधातिरकिटधीं	धींधागेतिरकिटतिं	ऽतातिरकिटधींधीं	
0			
11	12	13	14
धागेतिरकिटधींऽधा	तिरकिटधींधींधागे	तिरकिटतिंऽतातिरकिट	धींधींधागेतिरकिट
3			

12.4 स्वयं जांच अभ्यास

स्वयं जांच अभ्यास 1

12.1. झुमरा ताल में आठवीं मात्रा पे खाली होती हैं ?

क) गलत

ख) सही

12.2. झुमरा ताल में 13मात्राएँ होती हैं ?

क) सही

ख) गलत

12.3. झुमरा ताल में खाली कौन सी मात्रा पर होती हैं ?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 8

12.4. झुमरा ताल में कितने सम होते है ?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

12.5. झुमरा ताल में कितनी मात्राएं होती हैं?

क) 10

ख) 16

ग) 14

घ) 8

12.6. झुमरा ताल में कितनी ताली होती हैं ?

क) 3

ख) 2

ग) 13

घ) 6

12.7 झुमरा ताल में कितनी खाली होती हैं ?

क) 1

ख) 5

ग) 6

घ) 3

12.8. झुमरा ताल में सम कौन सी मात्रा पर होता है ?

क) 1

ख) 6

ग) 3

घ) 5

12.9. झुमरा ताल में 11वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है ?

क) धा

ख) धिं

ग) गदी

घ) ता

12.10 झुमरा ताल में 5वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है ?

क) धा

ख) धी

ग) धीं

घ) ता

12.5 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। इन तालों में झुमरा ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। झुमरा ताल 14 मात्रा की ताल है। इस ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। झुमरा ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की बंदिशों, गतों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि क साथ भी बजाया जाता है।

12.6 शब्दावली

- एकगुण: ठाह लय में बोलों को बजाना।
- दुगुण:- दुगनी लय में बोलों को बजाना।
- तिगुण: तिगुनी लय में बोलों को बजाना।
- चौगुण:- चौगुनी लय में बोलों को बजाना।

12.7 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

12.1 उत्तर: ख)

12.2 उत्तर: ख)

12.3 उत्तर: घ)

12.4 उत्तर: क)

12.5 उत्तर: ग)

12.6 उत्तर: क)

12.7 उत्तर: क)

12.8 उत्तर: क)

12.9 उत्तर: ख)

12.10 उत्तर: ग)

12.8 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश ।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद ।

12.9 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश ।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद ।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

12.10 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. झुमरा ताल का परिचय लिखिए।

प्रश्न2. झुमरा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन लिखिए ।

प्रश्न3. झुमरा ताल को हाथ पर बोलकर बताइए।

प्रश्न4. झुमरा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन हाथ पर बोलकर बताइए।

इकाई -13
पाठ्यक्रम में प्रयुक्त दीपचंदी ताल
(वादन के सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
13.1	भूमिका
13.2	उद्देश्यतथा परिणाम
13.3	दीपचंदी ताल का परिचय
13.3.1	दीपचंदी ताल का ठेका व एकगुन
13.3.2	दीपचंदी ताल की दुगुन
13.3.3	दीपचंदी ताल की तिगुन
13.3.4	दीपचंदी ताल की चौगुन
13.4	स्वयं जांच अभ्यास1
13.5	सारांश
13.6	शब्दावली
13.7	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8	संदर्भ
13.9	अनुशंसित पठन
13.10	पाठगत प्रश्न

13.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR कीयह तेहरवीं इकाई है। इस इकाई में संगीत में प्रयुक्त होने वाली दीपचंदी ताल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का विशेष महत्व रहता है। गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। ठुमरी में दीपचंदी ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। दीपचंदी ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। इस ताल को शास्त्रीय संगीत की बंदिशों के अतिरिक्त, ठुमरी, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि के साथ भी बजाया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी दीपचंदी ताल की मूलभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से उन्हें बजा सकेगें।

13.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- दीपचंदी ताल का परिचय प्रदान करना।
- दीपचंदी ताल को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- दीपचंदी ताल की लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, दीपचंदी ताल के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, दीपचंदी ताल को बजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, दीपचंदी ताल के वादन द्वारा कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, दीपचंदी ताल को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी।

13.3 दीपचंदी ताल का परिचय

मात्रा चौदह चार भाग संग, नहीं करत हदबंदी।
उपशास्त्रीय और सुगम संगीत में बाजत है दीपचंदी ॥१॥
होली, ठुमरी, कजरी, चैती, गीत, भजन मन भावे,
लोकगीत और सिने संगीत में, रंग विविध दरशावे।
ढोलक, तबला, नगाड़े में, चलत चाल जैसे नंदी,
ऐसी अद्भुत ताल ये जानों, कहलावे दीपचंदी ॥२॥
एक, चार, ग्यारह पर ताली, आठ खाली गुनि जानों,
विश्रांति के रंग अनौखे, बहुविधि साधक मानों।
गायन, वादन और नृत्य में दीखे हर नौचंदी,
'ब्रजरंग' लग्गी, लड़ी सजाओ, तबहिं बने दीपचंदी ॥३॥ पंडित देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'

दीपचंदी और चांचर-ये दोनों नाम वस्तुतः एक ही ताल के हैं। यह उपशास्त्रीय संगीत का ताल है, अतः तबले के साथ-साथ ढोलक और नक्कारे आदि पर भी इसका वादन होता है। ठुमरी और होली गायन की संगति हेतु इसका मुख्य रूप से प्रयोग होता है। यह स्वतन्त्र वादन का ताल नहीं है, अतः इसमें वादन की क्षमता अधिक नहीं है। विलम्बित, मध्य और द्रुत लय में इसका वादन होता है। इसमें लग्गी- लड़ी का सुन्दर प्रयोग होता है। 14 मात्रे के इस ताल का विभाग 3/4/3/4 का है, अतः यह अर्द्ध समपद मिश्र जाति का ताल हुआ। इसमें 3 ताली और 1 खाली है।

13.3.1 दीपचन्दी ताल का ठेका व एकगुन

एकगुन -

1	2	3	|	4	5	6	7	|	8	9	10	|	11	12	13	14
धा	धीं	S	|	धा	धा	तिं	S	|	ता	तिं	S	|	धा	धा	धीं	S
X			|	**2**				|	**0**			|	**3**			

13.3.2 दीपचन्दी ताल की दुगुन

दोगुन -

1	2	3	|	4	5	6	7	|	8	9	10	|	11	12	13	14
धाधीं	Sधा	धातिं	|	Sता	तिंS	धाधा	धींS	|	धाधीं	Sधा	धातिं	|	Sता	तिंS	धाधा	धींS
X			|	**2**				|	**0**			|	**3**			

13.3.3 दीपचन्दी ताल की तिगुन

तिगुन -

1	2	3	4	5	6	7
धाधींS	धाधातिं	Sतातिं	Sधाधा	धींSधा	धींSधा	धातिंS
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
तातिंS	धाधाधीं	Sधाधीं	Sधाधा	तिंSता	तिंSधा	धाधींS
0			**3**			

13.3.4 दीपचन्दी ताल की चौगुन

चौगुन -

1	2	3	4	5	6	7
धाधींSधा	धातिंSता	तिंSधाधा	धींSधाधीं	Sधाधातिं	SतातिंS	धाधाधींS
X			**2**			
8	9	10	11	12	13	14
धाधींSधा	धातिंSता	तिंSधाधा	धींSधाधीं	Sधाधातिं	SतातिंS	धाधाधींS
0			**3**			

13.4 स्वयं जांच अभ्यास

स्वयं जांच अभ्यास 1

13.1. दीपचंदी ताल में तीसरी मात्रा पे खाली होती हैं ?

क) गलत

ख) सही

13.2. दीपचंदी ताल में 7 मात्राएँ होती हैं ?

क) सही

ख) गलत

13.3. दीपचंदी ताल में खाली कौन सी मात्रा पर होती हैं ?

क) 1

ख) 5

ग) 3

घ) 4

13.4. दीपचंदी ताल में कितने सम होते है ?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

13.5. दीपचंदी ताल में कितनी मात्राएं होती हैं ?

क) 10

ख) 16

ग) 6

घ) 8

13.6. दीपचंदी ताल में कितनी ताली होती हैं ?

क) 1

ख) 2

ग) 3

घ) 6

13.7 दीपचंदी ताल में कितनी खाली होती हैं ?

क) 1

ख) 5

ग) 6

घ) 3

13.8. दीपचंदी ताल में सम कौन सी मात्रा पर होता है ?

क) 1

ख) 6

ग) 3

घ) 5

13.9. दीपचंदी ताल में 2सरी मात्रा पर कौन सा बोल होता है ?

क) धा

ख) धिं

ग) गदी

घ) ता

13.10 दीपचंदी ताल में 5वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है ?

क) धा

ख) धी

ग) किट

घ) ता

13.5 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। इन तालों में दीपचंदी ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। दीपचंदी ताल 14 मात्रा की ताल है। इस ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। दीपचंदी ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की बंदिशों, ठुमरी, गतों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि क साथ भी बजाया जाता है।

13.6 शब्दावली

- एकगुण: ठाह लय में बोलों को बजाना।
- दुगुण:- दुगनी लय में बोलों को बजाना।

- तिगुण: तिगुनी लय में बोलों को बजाना।
- चौगुण:- चौगुनी लय में बोलों को बजाना।

13.7 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

13.1 उत्तर: क)

13.2 उत्तर: ख)

13.3 उत्तर: घ)

13.4 उत्तर: क)

13.5 उत्तर: ग)

13.6 उत्तर: क)

13.7 उत्तर: क)

13.8 उत्तर: क)

13.9 उत्तर: ख)

13.10 उत्तर: क)

13.8 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

13.9 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

13.10 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. दीपचंदी ताल का परिचय लिखिए।

प्रश्न2. दीपचंदी ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन लिखिए ।

प्रश्न3. दीपचंदी ताल को हाथ पर बोलकर बताइए।

प्रश्न4. दीपचंदी ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन हाथ पर बोलकर बताइए।

इकाई -14
पाठ्यक्रम में प्रयुक्त कहरवा ताल
(वादन के सन्दर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
14.1	भूमिका
14.2	उद्देश्य तथा परिणाम
14.3	कहरवा ताल का परिचय
14.3.1	कहरवा ताल का ठेका व एकगुन
14.3.2	कहरवा ताल की दुगुन
14.3.3	कहरवा ताल की तिगुन
14.3.4	कहरवा ताल की चौगुन
14.4	स्वयं जांच अभ्यास1
14.5	सारांश
14.6	शब्दावली
14.7	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8	संदर्भ
14.9	अनुशंसित पठन
14.10	पाठगत प्रश्न

14.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह चौदवीं इकाई है। इस इकाई में संगीत में प्रयुक्त होने वाली कहरवा ताल को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तालों का विशेष महत्व रहता है। गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। कहरवा ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। इस ताल को शास्त्रीय संगीत की बंदिशों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि क साथ भी बजाया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी कहरवा ताल की मूलभूत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से उन्हें बजा सकेगें।

14.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- कहरवा ताल का परिचय प्रदान करना।
- कहरवा ताल को बजाने की क्षमता विकसित करना।
- कहरवा ताल की लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने केपरिणाम

- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, कहरवा ताल के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,ताल के संदर्भ में, कहरवा ताल कोबजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, कहरवा ताल के वादन द्वारा कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में,ताल के संदर्भ में, कहरवा ताल को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी।

14.3 कहरवा ताल का परिचय

उत्तर भारत में कहार नामक एक जाति होती है, जो प्रायः पानी का व्यवसाय करते हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत समूह लोक नृत्य को 'कहरवा नाच' कहा जाता है पूर्व और नृत्य के समय नक्कारे और ढोल पर इनकी संगति की जाती है। अतः कहरवा ताल के उद्गम का स्त्रोत यही है। यह ताल सुगम संगीत, फिल्म संगीत और लोक संगीत में समान रूप से प्रयुक्त होता है, अतः तबले के अलावा ढोलक, ताशा, नक्कारा एवं नाल आदि पर भी इसका खूब वादन होता है। शास्त्रीय संगीत हेतु इसका प्रयोग नहीं होता, और यह मूलतः संगति का ताल है। इसके ठेके की किस्में और इसमें प्रयुक्त लग्गी-लड़ियों का प्रयोग श्रवणीय होता है। 8 मात्राओं का यह समपद ताल है।

इसमें 4 - 4 मात्राओं के 2 विभाग होते हैं,

जिसमें पहली मात्रा पर ताली और पाँचवी मात्रा पर खाली होती है।

14.3.1 कहरवा ताल का ठेका व एकगुन

एकगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	गे	न	ति	न	क	धि	न
X				**0**			

14.3.2 कहरवा ताल की दुगुन

दोगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8
धागे	नति	नक	धिन	धागे	नति	नक	धिन
X				0			

14.3.3 कहरवा ताल की तिगुन

तिगुन -

1	2	3	4	5	6	7	8
धागेन	तिनक	धिनधा	गेनति	नकधि	नधागे	नतिन	कधिन ।
X				0			

14.3.4 कहरवा ताल की चौगुन

चौगुन –

1	2	3	4	5	6	7	8
धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन
X				**0**			

14.4 स्वयं जांच अभ्यास

स्वयं जांच अभ्यास 1

14.1. कहरवा ताल में तीसरी मात्रा पे खाली होती हैं?

क) गलत

ख) सही

14.2. कहरवा ताल में 8 मात्राएँ होती हैं?

क) सही

ख) गलत

14.3. कहरवा ताल में खाली कौन सी मात्रा पर होती हैं?

क) 2

ख) 1

ग) 4

घ) 5

14.4. कहरवा ताल में कितने सम होते है?

क) 1

ख) 5

ग) 9

घ) 13

14.5. कहरवा ताल में कितनी मात्राएं होती हैं?

क) 8

ख) 16

ग) 7

घ) 10

14.6. कहरवा ताल में कितनी ताली होती हैं?

क) 1

ख) 2

ग) 3

घ) 6

14.7 कहरवा ताल में कितनी खाली होती हैं?

क) 1

ख) 5

ग) 6

घ) 3

14.8. कहरवा ताल में सम कौन सी मात्रा पर होता है?

क) 1

ख) 6

ग) 3

घ) 5

14.9. कहरवा ताल में 2सरी मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) गे

ग) गदी

घ) ता

14.10 कहरवा ताल में 5वीं मात्रा पर कौन सा बोल होता है?

क) धा

ख) धी

ग) न

घ) ता

14.5 सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन और वादन के साथ विभिन्न प्रकार की तालों को बजाया जाता है। इन तालों में कहरवा ताल काफी प्रयोग की जाती हैं। कहरवा ताल 8 मात्रा की ताल है। इस ताल को एकगुण, दुगुण, तिगुण व चौगुण लयकारियों में तबले पर बजाया जाता है तथा हाथ पर ताली देकर भी प्रदर्शित किया जाता है। कहरवा ताल का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की बंदिशों, गतों के अतिरिक्त, सुगम संगीत व फिल्मी संगीत में कई मधुर गीतों, भजनों, गजलों इत्यादि क साथ भी बजाया जाता है।

14.6 शब्दावली

- एकगुण: ठाह लय में बोलों को बजाना।
- दुगुण:- दुगनी लय में बोलों को बजाना।
- तिगुण: तिगुनी लय में बोलों को बजाना।
- चौगुण:- चौगुनी लय में बोलों को बजाना।

14.7 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

14.1 उत्तर: क)

14.2 उत्तर: क)

14.3 उत्तर: घ)

14.4 उत्तर: क)

14.5 उत्तर: ग)

14.6 उत्तर: क)

14.7 उत्तर: क)

14.8 उत्तर: क)

14.9 उत्तर: ख)

14.10 उत्तर: ग)

14.8 संदर्भ

भगवत शरण शर्मा . (2007). ताल प्रकाश ,संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

श्री. राम नरेश राय . (2006). ताल दर्शन मंजरी (भाग 1-3),पाठक पब्लिकेशन 211003, इलाहबाद।

14.9 अनुशंसित पठन

भगवत शरण शर्मा . (2007) ताल प्रकाश, संगीत कार्यालय हाथरस -204101 उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनोहर भालचंद्रराव मराठे . (1991). ताल – वाद्य शास्त्र (एक विवेचन) शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर।

प्रो० बी. एल. यादव (2003).तबला प्रकाश , संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका इलहाबाद।

आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव . ताल परिचय , रूबी प्रकाशन गुरु तेग बहादुर नगर इलहाबाद 211016

पंडित विजय शंकर मिश्र (2005) तबला पुराण , कनिष्क पब्लिशर्स , डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली – 110 002

14.10 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. कहरवा ताल का परिचय लिखिए।

प्रश्न 2. कहरवा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन लिखिए ।

प्रश्न 3. कहरवा ताल को हाथ पर बोलकर बताइए।

प्रश्न 4. कहरवा ताल की एकगुन , दुगुन , तिगुन , और चौगुन हाथ पर बोलकर बताइए।

इकाई -15
(हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत)
(वादन के संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

क्रम	विवरण
15.1	भूमिका
15.2	उद्देश्य तथा परिणाम
15.3	हिमाचली लोक संगीत
15.3.1	देव गीतों में प्रयुक्त लोक ताल
15.3.2	देव तालों का परिचय
15.3.3	हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में बजने वाली नाटीताल , पहाड़ी कहरवा , पहाड़ी दादरा , और पहाड़ी चाचर का परिचय
	स्वयं जांच अभ्यास1
15.4	सारांश
15.5	शब्दावली
15.6	स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.7	संदर्भ
15.8	अनुशंसित पठन
15.9	पाठगत प्रश्न

15.1 भूमिका

संगीत (गायन तथा वादन) में, स्नातकोत्तर के क्रियात्मक पाठ्यक्रम MUSI504 PR की यह पन्द्रवीं इकाई है। इस इकाई में वादन के संदर्भ में, हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत को विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों का प्रस्तुतिकरण विशेष रूप से होता है, जो सुनने में मधुरता से युक्त, कर्णप्रिय, तथा आनंददायक होता है। हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों के प्रस्तुतिकरण के लिए तथा लोक वाद्यों पर बजने वाले तालों में प्रयुक्त बोलों को जानने के लिए वर्णों का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों के स्वरुप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और लोक तालों को लिख सकने का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे तथा क्रियात्मक रूप से वर्णों को लोक वाद्यों पर बजा सकेंगे।

15.2 उद्देश्य तथा परिणाम

सीखने के उद्देश्य

- हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों के क्रियात्मक स्वरूप की जानकारी प्रदान करना।
- हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों को लोक वाद्यों पर बजाने की क्षमता विकसित करना।
- हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों को लिखने की क्षमता विकसित करना।
- विद्यार्थी में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास करना।

सीखने के परिणाम

- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों के क्रियात्मक स्वरूप के विषय में जान पाएगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों को लिखने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों को बजाने में सक्षम होगा।
- विद्यार्थी,वादन के अंतर्गत, कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास होगा।
- विद्यार्थी में, वादन के अंतर्गत, हिमाचली लोक संगीत में लोक तालों में बजने वाले बोलों को जोडकर ,संगीत के विभिन्न रचनात्मक पहलुओं को मंच पर प्रदर्शित करने की क्षमता विकसित होगी और अनुभव भी प्राप्त होगा।

15.3 हिमाचली लोक संगीत (वादन के संदर्भ में)

भारतीय चिन्तन प्रवाह में लोक के लिए तीन शब्द प्रचलित रहे हैं। ग्राम, जन एवं लोक। लोक संगीत या लोक साहित्य में लोक शब्द शास्त्रीय मानदण्डों के अनुकूल रचित अभिजात या साहित्य या काव्य से भिन्नता का बोध करता है। लोक संगीत वह संगीत है जो कि शास्त्र के कुछ एक बन्धनों से मुक्त है। प्राकृत अवस्था में जिसका उद्भव उस जन-समुदाय विशेष द्वारा हुआ है, जो लोकप्रिय व कलापूर्ण संगीत में अप्रभावित रहा है। "लोक संगीत माधुरी स्थानीय लोक-सांस्कृतिक परम्परा से प्रसूत होती हैं। हिमाचल के लोक संगीत की अपनी ही कुछ विशेषताएं हैं। यह पहाड़ी घाटियों सा गम्भीर व्यापक पर्वतीय वायु सा स्वछन्द नदी नालों सा थिरकन भरा चंचल तथा विभिन्न वनस्पतियों के अनेक स्वाद लिए है।

प्राचीन काल से हमें कला का प्रभाव दो धाराओं में मिलता है। मार्गी संगीत तथा देशी संगीत, संगीत चाहे मार्गी हो या देशी दोनों का ही उद्गम लोक में प्रचलित संगीत से ही हुआ है। संगीत का लोक रूप

समय-समय पर परिष्कृत तथा परिमार्जित होकर शास्त्रीय संगीत रूप में परिणत होता रहा है। कला का लोक पक्ष शास्त्र विहित है। उसमें समाजिक परम्पराओं के विशिष्ट दर्शन होते है।

लोक संगीत मानव मन की अनुभूतियों की सरल निर्दोष, उन्मुक्त, स्वछन्द और सहज अभिव्यक्ति है। यह वस्तुतः जन-सामान्य में प्रचलित संगीत है जो एक परम्परागत रूपमें चलता है।"" जीवन का कोई प्रसंग कोई भावना, कोई प्रवृति उससे छूट नहीं पाती। कार्य करने के अवसर के गीत जैसे फसल बोने या काटने के गीत, संस्कार गीतों में जन्म, जनेऊ, विवाह आदि के गीत, ऋतु विषयक गीत पारिवारिक सम्बन्धों के गीत, प्रेम के मधुर मिलन से लेकर विरह की काली-संध्या तक की यादों में पिरोये गीत इत्यादि अनेक रचनायें गाई जाती हैं।

हिमाचल का लोक संगीत मधुरता, लय एवं तन्मयता के प्रसिद्ध है। अधिकतर लोक गीतों का विषय प्रणय है। क्योंकि प्रणय जीवन के जीवान्त का स्त्रोत हैं। प्रणय के अतिरिक्त ग्रामिणों के सरल जीवन के वर्ण से लेकर देवी-देवताओं से सम्बद्ध कथाओं अद्भुत वीरों, राजाओं एवं उनके कार्य कलापों व अन्य अनुभूतियों का वर्णन भी है। सामाजिक उत्सवों एवं धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त कुछ ऋतु विशेष में गाए जाने वाले गीत भी है। वाद्य यन्त्रों के प्रयोग के विषय में कोई विशेष नियम नहीं है। लेकिन मुख्य रूप से ढोल, नगारा, हुड़क, डमरू, ढोलकी आदि का प्रयोग ताल वाद्य के रूप में होता है। बांसुरी, शहनाई, अलगोजा, करनाल, रणसिंगा तथा काहल का प्रयोग स्वर वाद्यों के रूप में होता है। इन वाद्यों का प्रयोग सुविधानुसार ही किया जाता है और यह प्रयोग बहुत प्राचीन भी नहीं है। विकास के साथ-साथ यह प्रयोग होता रहा है। इसके अतिरिक्त आजकल के संगीत में अनेक पाश्चात्य वाद्यों का भी प्रयोग हो रहा है।

लोक नृत्यों की प्रदेश में अपनी एक विशिष्ट शैली है। सामूहिक लोक-नृत्यों का यहां अधिकाधिक प्रचलन है। कुछ लोक नृत्य ऐसे भी है जिसमें एक समय में एक नर्तक ही नाचता है। कुछ लोक नृत्य ऐसे भी है जो की विशेष नियमों में बन्धे होते हैं। किसी अन्य रूप में वहीं नृत्य अनिबद्ध रूप में भी देखे जा सकते हैं। लोक गीतों में प्रयोग होने वाले वाद्य ही लोक नृत्यों में भी प्रयोग होते हैं। लोक संगीत के अन्तर्गत वाद्यों की भी अपनी ही एक विशेष परम्परा के दर्शन होते हैं। लोक वाद्यों को देखने मात्र से प्रदेश की पहचान हो जाती है। जब एक लोक-वादक कलाकार अपनी परम्परागत वेश-भूषा पहनकर हाथों में करनाल लिए दिखता है तो बिना संशय से ही हिमाचल प्रदेश का चित्र आंखों के सामने आ जाता है। लोक वाद्यों के विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन अगले अध्यायों में किया जाएगा यहां केवल इतना ही कहना उचित होगा कि लोक वाद्यों से लोक-संगीत की पहचान एवं सजीवता में वृद्धि होती है। वाद्यों में आंचलिक भाव अनुभूति को अभिव्यक्त करने की पूरी सामर्थ्य मिलती है।

15.3.1 देव गीतों में प्रयुक्त लोक ताल

कहा जाता है कि मनुष्य के चलने से, नृत्य करने से ही सर्वप्रथम ताल का आभास हुआ, तत्पश्चात् वाद्यों की कल्पना की गई और जब वाद्यों का निर्माण हुआ तभी से विभिन्न तालों का भी विकास हुआ। हिमाचल के शिमला-सोलन पहाड़ी क्षेत्रों में भी लोक तालों का एक विशाल भण्डार है। इन क्षेत्रों में देवी-देवताओं को बकरे-भेड़ू की बलि दी जाती थी और फिर उन्हीं पशुओं के चमड़े को सुखाने के बाद ताल वाद्य बनाने के काम में लाया जाता था। किन्तु आज ये बलि प्रथा समाप्त हो चुकी है। इन क्षेत्रों में कई प्रकार के लोक वाद्य पाए जाते हैं, जिन पर विभिन्न प्रकार के लोक ताल बजाए जाते हैं। इन वाद्यों में से अनेकों ऐसे वाद्य हैं जो "देव वाद्यों" के नाम से जाने जाते हैं तथा जिन पर बजने वाले तालों को "देव ताल" कह कर भी पुकारा जाता है।

देव गीतों में तालों का विशेष योगदान रहता है। संगीत चाहे कितना भी सुन्दर क्यों न हो यदि उसमें ताल का समावेश हो जाए तो भावों की अभिव्यक्ति करना और अधिक आसान हो जाता है। ताल संगीत के प्रत्येक पहलू को निश्चित गति तथा समय के अनुसार नियन्त्रित करता है। संगीत में मर्यादा तथा अनुशासन ताल के द्वारा ही स्थापित किया जाता है। इस प्रकार ताल की लय अथवा अनुशासन एवं मर्यादा में गायन, वादन एवं नृत्य करने से विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। ताल का धर्म है कि वह गायन, वादन एवं नृत्य के भाव के अनुरूप व्यवहार करे और उन भावों को गति के माध्यम से स्पष्टता व स्थिरता प्रदान करे।

जिस प्रकार देव उपासना के लिए विभिन्न लोक गीत, देव-स्तुति गीत अथवा पहाड़ी भजन गाए जाते हैं उसी प्रकार देव-पूजा अथवा उपासना के लिए विभिन्न देव उत्सवों, मेले-त्यौहारों व अन्य संस्कार उत्सवों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के लोक-ताल (देव ताल) बजाए जाते हैं। इन अवसरों पर परम्परागत तरीके से ढोल, नगारा, चाँबी ढोल, डाँगा नगारा, डमरू, ताशा तथा घड़ियाल आदि पर सामूहिक रूप से विभिन्न तालों का वादन किया जाता है। इन वाद्यों के साथ संगत के लिए शहनाई, करनाल, रणसिंगा, बाँसुरी आदि का प्रयोग किया जाता है। इन देव वाद्यों पर भिन्न-भिन्न देव उत्सवों, मेले-त्यौहारों व संस्कार उत्सवों के अनुसार भिन्न-भिन्न ताल बजाए जाते हैं।

शिमला सोलन क्षेत्रों में ताल वादन शैली की अपनी एक अलग विशेषता यह है कि इन देव-वाद्यों पर तालों का वादन सामूहिक रूप से मिल कर किया जाता है परन्तु परण, टुकड़ों, तिहाई का चमत्कारिक एवं

कलात्मक रूप से वादन क्रमवार अलग-अलग कलाकार करते रहते हैं, जो कि ताल वादन को बहुत रोचक तथा मनमोहक बना देते हैं। जानकार श्रोता जो लय-ताल को समझने वाले होते हैं, गर्दन हिला कर हाथ के संकेत के साथ ताल के सम पर वादक कलाकार के साथ मिलकर कलाकार की उसके कला प्रदर्शन पर पूरी-पूरी प्रशन्सा करते हैं अर्थात् दाद देते रहते हैं।

शिमला-सोलन क्षेत्र में देव-संगीत के अन्तर्गत् बजाई जाने वाली तालें किसी न किसी देव-उत्सव, संस्कार उत्सव तथा मेले-त्यौहारों से सम्बन्धित हैं। जो ताल जिस अवसर पर बजाया जाता है उस ताल को उसी उत्सव, संस्कार तथा पर्व से सम्बन्धित नाम दिया जाता है। विभिन्न देव-वाद्यों पर ये ताल हाथ से तथा छड़ी से जिसे स्थानीय भाषा में छट्टी-बैणा भी कहते हैं से बजाए जाते हैं।

15.3.2 देव तालों का परिचय

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित तालों की उत्पत्ति का श्रेय यहां की विशेष जाति मंगलमुखी को जाता है। इस जाति के द्वारा यह तालें पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत ढंग से बजाई जाती हैं। इस प्रदेश में प्रयुक्त ताल-वाद्यों में ढोल और नगाड़ा वाद्य यन्त्र प्रमुख है और विभिन्न देव वाद्यों पर ये ताल हाथ से तथा छड़ी से जिसे स्थानीय भाषा में छट्टी-बैणाभी कहते हैं से बजाये जाते हैं। इस प्रदेश में संस्कारों त्यौहारों उत्सवों तथा देव पूजन आदि में ढोल, नगाड़े पर बजाई जाने वाली प्रमुख तालें निम्नलिखित हैं।

1. आरती ताल

शिमला तथा सोलन के कुछ क्षेत्रों में यह ताल बहुत प्रचलित है। व्यावसायिक कुशल कलाकार इस ताल को बड़े रोचक ढंग से बजाते हैं। जैसा कि इस ताल के नाम "आरती" से ज्ञात होता है कि यह ताल देव पूजा से सम्बन्धित है। प्रातः तथा सांय देवी-देवता की आरती पूजा के लिए इस ताल का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त आरती ताल से ही नगारा, ढोल तथा शहनाई वादन का प्रारम्भ विभिन्न देव-उत्सवों पर होता है।

शिमला- सोलन क्षेत्र में प्रचलित आरती ताल की 12 मात्राएं हैं। इसकी चाल एक अलग प्रकार की है जो कि इसके बोलों से स्वयं ज्ञात होती है। आरती ताल की मात्राएं तो शास्त्रीय एकताल तथा चारताल से मेल खाती हैं किन्तु इसके बोल इन शास्त्रीय तालों से बिलकुल भिन्न हैं।

इन क्षेत्रों के लोक तालों में ताली तथा खाली का संकेत अलग से नहीं दर्शाया जाता अपितु कई तालों में एक नगारे पर एक छड़ी के वादन से दर्शाया जाता है जिसे "डांगा" कहते हैं। इस डांगे से सारे ताल की

बोल-बाँट का पता चलता है। डांगा एक बाँये नगारे के अतिरिक्त चाँबी ढोल के बाँयें पूड़े पर भी एक छड़ी के साथ बजाया जाता है। जो ताल की चाल तथा लय को बहुत रोचक भी बनाता है।
सम है।

आरती ताल की ताललिपि इस प्रकार है ::-

यह 12 मात्रा का ताल है तथा इसके चार भाग हैं। पहली मात्रा पर सम है

1	2	3	4	5	6
धा	ता	धीऽन	धा	ता	कड़कड़
X			**2**		
7	8	9	10	11	12
ताँ	ता	धीऽन	धा	ता	कड़कड़
0			**3**		

1	2	3	4	5	6	7	8
धाऽतण	ऽधिंऽगड़	झांऽनांऽ	तणाऽगड़	झांऽऽनां	ऽधिंगड़	झांऽनांऽ	तणाऽगड़
9	10	11	12				
ताऽतांऽ	धिंऽनझां	ऽऽधा	गेनाऽग				

2. जातर ताल

हिमाचल को देव भूमि के नाम से भी पुकारा जाता है। यहाँ के लोगों में देवी-देवताओं के प्रति बडी आस्था है। अतः समय-समय पर देव-त्यौहारों का आयोजन होता रहता है। इन विभिन्न त्यौहारों पर लोक वाद्यों पर विभिन्न प्रकार के तालों का वादन होता है। देव-पूजा तथा देव-नृत्यों पर समय-समय पर विभिन्न ताल बजाए जाते हैं। नृत्य तालों में "जातर ताल" प्रमुख हैं। शिमला क्षेत्र में इस ताल पर देव रथ का नृत्य करवाया जाता है। इन देव रथों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ रखी होती हैं जिसमें केवल चेहरा ही बना होता है। जिसे "मोहरा" कहते

हैं। इन रथों को रंग-बिरंगे वस्त्रों तथा फूल-मालाओं से सजाया जाता है। दशहरे, लाहलल विशु के त्यौहार के समय तथा जब किसी के मन की कामना (मन्नत) देवता द्वारा पूर्ण हो जाती है तो देव-रथ नृत्य का आयोजन किया जाता है। इस आयोजन को "जातर" के नाम से पुकारा जाता है। इस अवसर पर शहनाई की धुन के साथ तथा रणसिंगा, करनाल आदि फूंक वाले वाद्यों की गूंज के साथ नगारा, ढोल आदि वाद्यों पर यह ताल "जातर" बजाया जाता है। जातर ताल कीताललिपि यहाँ दो प्रकार से बताई जा रही है।

प्रथम प्रकार में इस ताल की मात्रा 3, भाग - 1 तथा ताली भी एक है तथा

दूसरे प्रकार में इसकी मात्रा - 4, भाग - 4 तथा ताली भी 4 होती हैं

प्रथम प्रकार की ताललिपि

मात्रा	-	1	2	3
ठेका	-	धा	टाँ	टाँ
ताली	-	1		

दूसरे प्रकार की ताललिपि इस प्रकार है।

मात्रा	-	1	2	3	4
ठेका	-	धाकिता	घीन्नाकी	घीन्नाकी	धाकड़कड
ताली	-	1	2	3	4

3. जंग ताल

यह ताल देव प्रकट के लिए बजाया जाता है तथा अन्य शुभ अवसरों पर भी इसका वादन किया जाता है। जब देवता का पुजारी शरीर हिला कर काँपता है जिसे यहाँ पर "खेल" या "गरनी" कहा जाता है तब इस वीर रस के "जंग ताल" का वादन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य शुभ अवसरों जैसे कि विवाह संस्कार आदि पर भी इस ताल का वादन होता है। इसे युद्ध का ताल भी कहते हैं। कुछ देव मेले यहाँ पर पत्थर युद्ध के होते हैं जिसमें कि आमने-सामने की पहाड़ियों से दो मण्डलियां एक-दूसरे पर पत्थर मारती हैं तब इस खेल या युद्ध के साथ भी इस ताल को सामूहिक वाद्यों पर बजाया जाता है। इसके अतिरिक्त इस ताल का वादन तीर-कमान के युद्ध

या मेले "ठोडे के खेल" भी होता है। लोक नाट्य करयाला जो शिमला-सोलन का एक लोकप्रिय नाटक है, इसको प्रारम्भ करने से पहले भी इसी ताल को दो ढोलों पर बजाया जाता है। इसे करयाला का जंग भी कहते हैं। इस ताल का वादन विभिन्न अवसरों पर होता है। इस ताल की दो मात्राएं तथा डाँगा ताली के अनुसार एक भाग बनता है। यूँ तो यह दो मात्रा का ताल है परन्तु इसका वादन जब सामूहिक रूप से होता है तो यह बहुत प्रभावशाली, रोचक तथा मन को हिला देने वाला होता है। इस ताल में एक वादक सीधा ताल बजाता रहता है तथा दूसरा वादक शहनाई की धुन के साथ परण, टुकड़ों तथा तिहाइयों का काम करता रहता है। अधिकतर इस ताल में परण, टुकड़े, तिहाइयों का काम दो ढोल वादक बारी-बारी से करते रहते हैं तथा नगारा वादक सीधा ताल बजाता रहता है जिसे ठेके की चाल कहते हैं। ढोलों पर परण, टुकड़ों का क्रम घण्टों चलता रहता है। इस ताल को करनाल तथा रणसिंगा का वादन और अधिक रोचक बना देता है। इस ताल कीताललिपि इस प्रकार है :-

ताल -- जंग
मात्रा -- 2
भाग -- 1
ताली -- 1

मात्रा -	1	2
ठेका -	धीन	ताँताँ
ताली -	1	

चार आवर्तन में :-

ठेक -	धींन	ताँताँ	धींन	ताँताँ	धींन	ताँताँ	धींन	ताँताँ
ताली -	1		1		1		1	

जंग ताल का दूसरा प्रकार –

मात्रा -- 4

भाग -- 4

ताली -- 4

मात्रा -	1	2	3	4
ठेका -	धाकड़कड़	धाSताँ	घीन्नाकी	घीन्नाकी
ताली -	1	2	3	4

4. बाड़ा देव ताल

यह एक दुर्लभ प्रकार का प्राचीन ताल है। ऐसे ताल शास्त्रीय तालों में भी कम सुनने को मिलते हैं। इस ताल की साढ़े ग्यारह मात्रा है। इसकी बोल-बाँट लोक वाद्यों नगारा, ढोल के अनुसार बनाई गई है। यह ताल बाड़ा देओ अर्थात् बड़ा देवता (पाँच पाँडवों को बड़ा देवता के नाम से पूजा जाता है।) की पूजा के लिए उनकी रथ यात्रा पर वर्ष में एक बार ही बजाया जाता है। सरयांज नामक गाँव में इस देवता का भव्य मेला आशाढ़ मास की सक्रान्ति को लगता है। ऊँची पहाड़ी पर घने जंगलों के बीच इस देवता का मन्दिर है। जहाँ प्रतिवर्श देव - पालकी यात्रा तीन मन्दिरों से यहाँ एकत्रित होती है। मेले के आठ दिन पूर्व से ही इस देवता की प्रातः तथा सांय लोक वाद्यों के साथ पूजा की जाती है। इन दोनों समय में विभिन्न प्रकार के ताल बजाए जाते हैं जिन्हें "बेल" कहते हैं। देव-यात्रा के साथ विभिन्न वाद्यों पर सामूहिक रूप से यह ताल बजाया जाता है। इस देव-यात्रा के साथ नगारा, ढोल, ढौकली, चाँबी ढोल, भाणा, घड़ियाल, करनाल, रणसिंगा तथा शहनाई आदि के वादन के साथ यह ताल बजाया जाता है। इसकी ताली दर्शाने को चाँबी ढोलों का जोड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस ताल को लिपिबद्ध करना एक कठिन कार्य था किन्तु संगीत कलाप्रेमियों की जानकारी हेतु इसे दो प्रकार से लिपिबद्ध किया गया है। यदि हम इसे साढ़े ग्यारह मात्रा में ही विभाजित करें तो दूसरी बार सम मात्रा के खाली संकेत पर आएगा। इसे 23 मात्रा में विभाजित करके भी लिपिबद्ध किया गया है परन्तु इसकी लय की चाल साढ़े ग्यारह मात्रा वाली लय में पूरी उतरती है। इस ताल का सम रूपक ताल की तरह खाली पर अर्थात् नगारा ढोल के दाँयें पूड़े पर आता है। **बाड़ा देओ ताल की ताल लिपि का प्रथम प्रकार -**

मात्रा - साढ़े ग्यारह

भाग - 7

ताली - 7

नोट : यहाँ पर शुन्य का चिन्ह आधी मात्रा दर्शाने को दिया गया है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ताँ	कड़कड़	धीधी	ना	धा	धा	कड़कड़	तड़ान्न	कड़कड़	तड़ान्न	धीऽन	ताँ
1		2		3	4		5		6	7	0

बाड़ा देओ ताल कीताललिपि का दूसरा प्रकार -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
तां	S	कड़	कड़	धी	धी	ना	S	धा	S	धा	S

13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23
कड़	कड़	तड़ां	ऽन	कड़	कड़	तड़ां	ऽन	ऽधी	ऽना	ऽऽतां

बाड़ा देओ ताल का तीसरा प्रकार

मात्रा - 8

भाग — 5

ताली - 5

मात्रा -	1	2	3	4	5	6	7	8
ठेका -	धीनकटां	कड़कड़	धीनकटां	कड़कड़	धीनकटां	कड़कड़	कड़कड़	कड़कड़
ताली -	1		2		3		4	5

5. धरेवणी ताल

जब देवता के चेले अथवा 'गुर' को खेलाया जाता है तब धरेवणी ताल बजाई जाती है। हर देवते का एक विशेष व्यक्ति गुर होता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'दिवा' भी कहते हैं। जब किसी देव स्थान में या किसी के घर में देवता आता है या कोई देवोत्सव होता है तो देवता के करदार या (कलयाणे) इकट्ठे होकर देवता की पूजा करके उसका आह्वान करते हैं तथा उस गुर (दिवें) को मध्य में बिठाया जाता है और धरेवणी ताल बजानी प्रारंभ की जाती है। उस समय देवता उस व्यक्ति विशेष 'गुर' में प्रविष्ट हो जाता है। धरेवणी ताल में 8 मात्रायें होती हैं। धीरे-धीरे इसकी लय बराबर की लय से बढ़ा दी जाती है। जब देवता उस व्यक्ति विशेष में बोलना शुरू करता है तो यह ताल बजाना बन्द कर दी जाती है । इसके बोल निम्न प्रकार से हैं –

झां	तां	तां	घड़ान	|	झां	ना	घेघे	ना
X				|	2			

6. देवता पूजन ताल

यह ताल देवता पूजन के समय प्रयुक्त होती है। मंदिर में स्थानीय मंगलामुखियों द्वारा पूजा के समय बजाई जाती है। इसके अतिरिक्त कई बार लोगों ने मन्नत की होती है तो वे देवता को अपने घरों में बुलाते हैं। उस समय पूजा में भी यही ताल बजाई जाती है। यह ताल आठ (8) मात्रा की होती है।

इसके बोल निम्नलिखित हैं-

1	2	3	4	|	5	6	7	8
झांऽण	ताऽता	ऽतिरकिट	ताऽता	|	घिनण	तकझा	ताक्ड	झांतां
X				|	0			

7. हवन ताल

यह ताल मंदिर में हवन के समय बजाई जाती है। हवन हर सक्रांति को पूर्णमासी वाले दिन तथा ग्रहण लगने के उपरान्त किया जाता है। धरेवणी के समय जब देवता को धूप दे रहे होते हैं तो उस समय भी हवन ताल को बजाया जाता है।

यह आठ मात्रा की ताल है-

1	2	3	4	5	6	7	8
झांऽना	ऽणझा	ताऽधि	ऽणतां	तांऽना	ऽणझां	ताऽधि	ऽणतां
X				0			

8. वरा ताल

यह ताल दुर्गा माता के पूजन के समय बजाई जाती है। देवता पूजन के समान ही यह ताल 8 मात्रा में बजाई जाती है परन्तु बोलों में अन्तर है इसके बोल इस प्रकार से हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8
झांऽ	तां	घि	ना	ताऽ	कड	घि	ना
X				0			

9. नैई ताल

यह ताल लगभग बारा ताल का ही एक प्रकार है देवी माता दुर्गा की 'खेल' जब स्त्रियों को आती है तो नैई ताल बजाई जाती है। कुछ समय पूर्व नैई देवी के मेले लगते थे जो दुर्गा माता की उपासना स्तुति के प्रतीक थे। खड़धार मेला भी इसी मेले के नाम से लगता है। यह ताल आठ (8) मात्राओं की ताल है जिसके बोल निम्न प्रकार से हैं -

1	2	3	4	5	6	7	8
घिन	णता	ऽगड़	घिना	किन	णझा	ऽगड़	घिना
X.				0			

10. मिलणी ताल

यह ताल कुल्लू के दशहरे में उस समय बजाया जाता है जब देवी-देवता एकत्र होते हैं। इस ताल में दस मात्रायें होती हैं जिसके बोल इस प्रकार से हैं-

1	2	3	4	5	6	7	8
झांगण	घिणझां	नाघिण	झांगण	घिणझां	नणघिण	झांनण	घिणझां।
X		0		2		3	

15.3.3 हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में बजने वाली नाटी ताल, पहाड़ी कहरवा, पहाड़ी दादरा, और पहाड़ी चाचर का परिचय

हिमाचल प्रदेश के अवनद्ध वाद्य अपनी पारम्परिक वादन शैली के कारण अन्य प्रदेशों से भिन्न है। परम्परागत वादन शैली आज केवल कुछ ही वाद्य वादकों के पास सुरक्षित है। आधुनिकता के परिवेश में आकर नव युवा पीढ़ी इस धरोहर को संजोकर रखने में असमर्थ रही है। विभिन्न अवसरों, पर्वों और रीति रिवाजों पर बजाये जाने वाले विभिन्न वाद्य आज भी आज काल-क्वलित हो रहे हैं। अतः यह सम्भव है कि उन की वादन शैलियां भी लुप्त ही होंगी। शोधार्थी में मन में इस अमूल्य सम्पदा के प्रति विशेष स्नेह है। अतः इन वादन शैलियों के मूल तत्वों को समझनें और उनके व्यवहारिक पक्ष को संरक्षित करने के लिए यही उचित समझा है कि इस कला के पारंगत वयोवृद्ध वाद्य-वादकों से साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जाये।

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित तालों की उत्पत्ति का श्रेय यहां की विशेष जाति मंगलमुखी को जाता है। इस जाति के द्वारा यह तालें पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत ढंग से बजाई जाती हैं। इस प्रदेश में प्रयुक्त ताल-वाद्यों में ढोल और नगाड़ा वाद्य यन्त्र प्रमुख है। इस प्रदेश में संस्कारों त्यौहारों उत्सवों तथा देव पूजन आदि में ढोल, नगाड़े पर बजाई जाने वाली प्रमुख तालें निम्नलिखित हैं।

नाटी ताल

हिमाचल प्रदेश में हर जगह अपने-अपने किस्म की नाटियां गाई जाती हैं या नाची जाती हैं। प्रायः नाटी में लोग माला बनाकर एक दूसरे के कन्धों पर बाहें डाल कर या हाथ में हाथ पकड़ कर खुशी के अवसरों पर नाचनें का आनन्द लेते हैं। जिस ताल में यह नाटियां गाई जाती हैं उसे नाटी ताल कहते हैं। यह कई प्रकार के तालों में गाई जाती है।

यह ताल विलम्बित लय की नाटी के साथ बजाई जाती है। यह ताल 16 मात्रा की ताल है इसे पहाड़ी ताल भी कहते हैं -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
झां	ना	निंण	झागे	तां	निण	तां	त्रक	तां	तांतां	तां	त्रक	झां	घिना	झां	त्रक
X				2				0				3			

यही ताल अर्थात् 'विलम्बित नाटी' की ताल जो कि 16 मात्राओं में बधित है निम्न

प्रकार से भी बजाई जाती है –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
झाण	झाण	नक	झाण	तां	तिर	किट	तिरकिट	ताण	तिरकिट	ताण	तिरकिट	ताण	झा	कड़घना	तिरकिट
X				0			2		0		3			4	

नाटी ताल दूसरा मत

यह ताल अधिकतर लोक नृत्य 'नाटी' के साथ प्रयोग होता है। सोलन तथा विशेषकर शिमला जिला का यह एक अत्यन्त लोकप्रिय ताल है। इस ताल को लोक नृत्यों के अतिरिक्त देव नृत्यों के साथ भी बजाया जाता है। नाटी ताल के कई प्रकार हैं जैसे कि नाटी, ढीली नाटी, देव नाटी, मालन नाटी, मुँजरा नाटी इत्यादि। इस ताल की मात्रा चार, छः, आठ, बारह के प्रकार में विभाजित होती है। नाटी ताल का वादन ढोल, चाँबी ढोल,

दमामटू अर्थात् एक दाँया छोटा नगारे पर होता है। शहनाई वादक शहनाई पर नाटी की भिन्न-भिन्न लोक धुनों को श्रोताओं के मनोरंजन के लिए बजाता रहता है। ढोल वादक नाटी ताल को आकर्षक बनाने के लिए बीच-बीच में परण, टुकड़ों, तिहाइयों का वादन भी करता रहता है। इस नाटी ताल तथा नाटी लोक गीत के साथ रात-रात भर लोक नर्तक नाचते रहते हैं। यहाँ पर इस ताल के केवल दो प्रकार ही दिए जा रहे हैं। नाटी तथा ढीली नाटी अर्थात् नाटी या विलम्बित नाटी का चार मात्रा का प्रकार तथा ढीली नाटी का 12 मात्रा का प्रकार दिया जा रहा है।

ताल - नाटी

मात्रा - 8

भाग - 4

ताली – 4

मात्रा -	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल -	धाऽना	ऽक्ड़	धाऽना	ऽक्ड़	धाऽना	ऽक्ड़	धाऽक	ऽड़क्ड़
ताली -	1		2		3		4	

नाटी ताल का दूसरा प्रकार 'ढीली नाटी' ताल

ताल -- ढीली नाटी

मात्रा - 12

भाग - 4

डांगा – 4

मात्रा -	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	क्ड़ां	तींतीं	नाकी	क्ड़ां	तींतीं	नाकी	क्ड़ां	तींतीं	नाकी	तांता	ऽनधी	ऽन्ना
	1			2			3			5		

पहाड़ी कहरवा ताल

साधो के स्वांग के बाद झूलना आता है जिसमें कई प्रकार की तालें बजाई जाती है। सबसे पहले झूलनें में जब साईं आते हैं तो उनके अखाड़े में प्रवेश के साथ ही कहरवा ताल बजाई जाती है जो आठ मात्राओं में निहित होती है। जिसके बोल निम्नलिखित हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8
घि	ण	ना	ती	घि	ण	जा	णा
X				**0**			

कुछ स्थानों पर नाटी ताल जिसे प्रदेश में पहाड़ी मुंजरा ताल भी कहते हैं। इसमें 8 मात्रायें होती हैं।

1	2	3	4	5	6	7	8
धारा	राता	घिन	ताती	घिन	ताती	झिना	तिरकिट
X				0			

पहाड़ी दादरा ताल –

यह ताल भी नाटी नृत्य व नाटी गायन के साथ बजाई जाती है। इस ताल में मात्राएं 12 होती हैं। इसके तीन प्रकार हैं। तीनों की मात्रायें समान होते हुए भी बोलों में भिन्नता पाई जाती है –

पहला –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
झां	तिरकिड़	झां	तां	तां	तां	ता	तिरकिड	झां	तक	घिना	तिरकिड़
X		2		0		3		4		0	

दूसरा –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
झां	घिन	झां	तां	तिरकिट	ताण	तिरकिट	ताण	तां	ता	कडाघिना	तिरकिट
X			0		2		0		3		

यह ताल नाटी रथेवला के साथ बजाई जाती है। यह नाटी ताल लगभग खुशी के अवसरों पर या सम्मानित लोग मेले आदि में जा रहे हैं, तो उनके सम्मान में बजाई जाती हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
झांऽ	निण	झागे	तांS	SS	तृक	झां	तां	तां	तां	झांण	झां
X			0			20					

पहाड़ी चाचर ताल -

इस ताल को कुछ क्षेत्रों में झिंझोटी ताल भी कहते हैं। इस ताल में 14 मात्रायें होती हैं बोल निम्नलिखित हैं -

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
झां	झां	त्रिक	झां	झां	झांगे	नाण	तां	तां	त्रिक	झां	झां	झांगे	नाण
				X			2		0				3

यह ताल दो प्रकार से बजाई जाती है पहला प्रकार आठ मात्राओं का है तथा दूसरा प्रकार चौदह (14) मात्राओं का है जो दीपचन्दी के बराबर के माप का ताल है, यह ताल एक विशेष प्रकार के लोक गीत के साथ बजाई जाती है। जिसे झिंझोटी कहते हैं। यह मंगलामुखियों का पारम्परिक गीत होता है, जिसे ये लोग करियाला, मुजरे, मेले या किसी के घर जाकर शुभ अवसर पर गाते हैं –

पहला –

1	2	3	4	5	6	7	8
घिण	झांधि	णझां	नागे	तांण	तांतां	णता	त्रिक
X				0			

दूसरा –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
झां	झां	त्रिक	झा	झां	झागे	नाण	तां	तां	त्रिक	झां	झां	झागे	नाण
X			2			0				3			

इस ताल के दूसरे रूप को कुछ लोग 'करयाले' में अर्थात् मंगलामुखी लोग कुछ भिन्न प्रकार से भी बजाते हैं वस्तुतः यह भी चौदह (14) मात्राओं में ही बजता है। वास्तविकता में 'करयाला' शब्द 'कर' अर्थात् मन्नत का ही पर्यायवाची है। यह देव बीजु की भेंट के लिए दिया जाता है। 'करयाला' बहुत प्राचीन लोक नाट्य है। यह ताल चन्द्रावली के स्वांग के समय बजाया जाता है। इसके बोल निम्न प्रकार से बजाये जाते हैं-

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
झांण	झांण	तां	झांण	तिरकिट	झाण	तिरकिट	ताण	ताण	तां	झाण	तिरकिट	झाण	तिरकिट
X			2				0			3			

ऊपर लिखित ताल का रूप शास्त्रोक्त ताल झूमरा के साथ काफी मिलता है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धिं	Sधा	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तिं	Sता	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट
X			2				0			3			

इसी लोक नाट्य अर्थात् करयाला में इससे पहले दयोठ पूजन किया जाता है। पूजन करते वक्त मंगलामुखी लोग एक विशेष ताल बजाते हैं जो आठ (8) मात्राओं में निबद्ध हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8
झाण	झाजा	झिन्ना	तिरकिट	ताण	धागे	नधा	तिरकिट
X				0			

कुछ आधुनिक तालें

वर्तमान समय में ने केवल मनुष्य के रहन-सहन में ही परिवर्तन आया है बल्कि लोक वाद्य व इन पर बजने वाली तालों में भी परिवर्तन आया है। इन दिनों टी-सिरीज से निकली लोक संगीत कैसेट व अन्य किसी अवसरों पर आरकेस्ट्रा पर गाये-बजाये जाने वाले लोक-गीत इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि पश्चिम संगीत से लोक-संगीत भी अप्रभावित नहीं है। आज के इस बदलते हुए युग में लोक गीतों के साथ संगत करने के लिए ड्रमस व

बोगो इत्यादि ताल वाद्य प्रयुक्त किये जाते हैं। इन ताल वाद्यों पर बजने वाली मुख्य दो तालें हैं जिसका प्रयोग वर्तमान में अधिक हो रहा है वो हैं कहरवा व दादरा। इन दोनों तालों के रूप भिन्न हैं।

कहरवा

यह चार मात्रा में ही बजाया जाता है। इसके बोल हैं –

धीं धीं ता ऽ

दादरा

यह छः मात्राओं में बजाया जाता है और इसके बोल हैं –

धीं धीं ता के के के

स्वयं जांच अभ्यास 1

15.1 हिमाचल प्रदेश में प्रचलित तालों की उत्पत्ति का श्रेय किस विशेष जाति को जाता है।

क) मंगलमुखी

ख) गंधर्व

ग) मुग़ल

घ) अंग्रेज़

15.2 हिमाचल प्रदेश में प्रयुक्त ताल-वाद्यों में वाद्य यन्त्र प्रमुख है?

क) शंख

ख) ढोल और नगाड़ा

ग) पखावज

घ) तबला

15.3 विलंबित नाटी की ताल 16 मात्रा की होती है ।

क) हां

ख) नहीं

15.4 पहाड़ी कहरवा 8 मात्र का होता है।

क) सही

ख) गलत

15.5 पहाड़ी दादरा कितनी मात्र का होता है ।

क) 16

ख) 8

ग) 12

घ) 6

15.6 पहाड़ी चाचर कितनी मात्र का होता है ।

क) 14

ख) 16

ग) 10

घ) 8

15.4 सारांश

संगीत आदि काल से ही अनेक धाराओं में प्रवाहित होता हुआ आधुनिक स्वरूप तक पहुंचा है। प्राचीन सभ्यता एवम संस्कृति को उजागर करने में लोक संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है , हिमाचल की संस्कृति यहाँ के लोक गीत, लोक नृत्य, और लोक वाद्यों के माध्यम से सजीव है। इससे लोक ताल –वाद्यों के ज्ञान के साथ-साथ बोलों के स्वरुप को जानने में वृद्धि होती है। इससे विद्यार्थियों में कल्पना, उपज तथा सृजनात्मक गुणों का विकास संभव होता है।

15.5 शब्दावली

- सरगम गीत: किसी राग में प्रयुक्त होने वालेस्वरोंकी तालबद्ध रचना कोसरगम गीत कहा जाता है।
- स्वरमालिका: किसी राग में प्रयुक्त होने वालेस्वरोंकी (स्वरों की माला) तालबद्ध रचना को स्वरमालिका कहा जाता है।
- शास्त्रीय संगीत: शास्त्रीय संगीतवह संगीत है जो नियमों से बंधा होता है।
- लोक संगीत : यह वह संगीत है जो कि शास्त्र के कुछ एक बन्धनों से मुक्त होता है।

15.6 स्वयं जांच अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

स्वयं जांच अभ्यास 1

15.1 उत्तर: क)

15.2 उत्तर: ख)

15.3 उत्तर: क)

15.4 उत्तर: क)

15.5 उत्तर: ग)

15.6 उत्तर: क)

15.7 संदर्भ

डॉ. राजीव शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, अगस्त 2024।

डॉ. कीर्ति गर्ग से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, अक्तूबर 2024

श्री विक्रांत शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. मृत्युंजय शर्मा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, सितम्बर 2024

डॉ. कीर्ति गर्ग भाटिया (2019) शिमला – सोलन क्षेत्र में प्राचीन देव संगीत, सत्यम पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

15.8 अनुशंसित पठन

डॉ. राजीव शर्मा (2019) हिमाचल प्रदेश के अवनध वाद्य तथा वादन शैलियाँ,सत्यम पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

डॉ. कीर्ति गर्ग भाटिया (2019) शिमला – सोलन क्षेत्र में प्राचीन देव संगीत, सत्यम पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली

15.9 पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. हिमाचली लोक संगीत की व्याख्या कीजिये ।

प्रश्न 2. देव गीतों में लोक ताल और देव तालों का परिचय दीजिये ।

प्रश्न 3. नाटी ताल, पहाड़ी कहरवा, पहाड़ी दादरा, और पहाड़ी चाचर का परिचय लिखिए।

प्रश्न 4. बधाई ताल 28 मात्रा को लिख कर समझाइये ।

प्रश्न 5. नाटी ताल को बजाकर सुनाइए।

प्रश्न 6. पहाड़ी दादरा को लिखकर और बजाकर समझाइए।

महत्वपूर्ण प्रश्न- कार्यभार

प्रश्न 1. भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास का परिचय लिखिए ?

प्रश्न 2. ताल और ताल के दस प्राणों को विस्तारपूर्वक लिखिए ?

प्रश्न 3. नाट्यशास्त्र और संगीत रत्नाकर में अवनध वाद्यों को संक्षिप्त में लिखिए ?

प्रश्न 4. . लय और लयकारी को विस्तृत में लिखिए ?

प्रश्न 5. तबला में स्वतन्त्र वादन लिखिए/बताइए ?

प्रश्न 6. पंडित किशन महाराज, जाकिर हुसैन , और पंडित सामता प्रसाद का परिचय लिखिए ?

प्रश्न 7. तबला संगत क्या है लिखिए/बताइए ?

प्रश्न 8. झुमरा ताल में दो कायदे पलटों और तिहाई के साथ लिखिए ?

प्रश्न 9. तिलवाड़ा ताल और दीपचंदी ताल का परिचय और एकगुन और दोगुन लिखिए ?

प्रश्न 10. हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत को विस्तारपूर्वक लिखिए ?